महानुभावगोस्वामिश्रीहरिरायचरणप्रणीता

सिद्धान्तरहस्यविवृतिः

व्रजभाषाऽनुवादश्च

गोस्वामिकुलकौस्तुभश्रीगोकुलनाथमहाराजाना-
मनुज्ञया अनुवादकर्ता

देवर्षिभट्टश्रीरमानाथशास्त्री

सं. १९८४ व. ४४९ निर्म—॥)

॥ श्रीहरिः ॥

अखण्डभूमण्डलाचार्यदैवजीवोद्धारपरायण
जगद्गुरुश्रीमद्वल्लभाचार्यचरणप्रणीतं

सिद्धान्तरहस्यम् ।

महानुभावगोस्वामिश्रीहरिरायचरण
प्रणीता तद्विवृतिश्च

व्रजभाषाऽनुवादश्च ।

गोस्वामिकुलकौस्तुभश्रीगोकुलनाथमहाराजाना-
मनुज्ञया

अनुवादकर्ता
देवर्षिभट्टश्रीरमानाथशास्त्री

तदेतत्सर्वं
माणसानिवासिवैष्णवजनद्रव्यसाहाय्येन पुष्टिमार्ग-
सिद्धान्तकार्यालयात्प्रकाशितम् ।

सं. १९८४ व. ४४९ निर्म–॥)

पुस्तक मिलनेका ठिकाना

१—श्रीबालकृष्णपुस्तकालय बडामंदिर—बम्बई
२—पुष्टिमार्गसिद्धान्तकार्यालय बडामंदिर—बम्बई
३—लालबावाका मंदिर भुलेश्वर—बम्बई
४—वैष्णवपरिषद् मंत्री बडामंदिर—बम्बई
५—श्रीविट्ठलनाथपाठशाला—कोटा—राजपूतना

मोहमय्याम्

मणिलाल इ. देसाई इत्यनेन स्वीये 'गुजराती' पत्रस्य

"न्यूस मुद्रणयन्त्रालये"

मुद्रयित्वा प्रकाशितः।

॥ श्रीहरिः ॥

महाप्रभु गो. श्रीहरिरायचरण
और उनकी
सिद्धान्तरहस्यकी टीका।

गोस्वामि श्रीहरिरायचरणको प्रादुर्भाव संवत् १६४७ में भाद्रपद कृष्णा पंचमीकेदिन भयो हो। श्रीहरिरायजी श्रीगुसाईजीके द्वितीय पुत्र गो. श्रीगोविन्दरायजी के पौत्र और गो. श्रीकल्याणरायजी के पुत्र हे। अर्थात् श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीसूं पांचमी पीढीमें हे। आजकाल जहां श्रीनाथद्वारमें श्रीविठ्ठलनाथजीको द्वितीय स्वरूप बिराजे है सो श्रीहरिरायजीको गृह है। वहां ही श्रीहरिरायजी बिराजते हते। श्रीहरिरायजीकूं श्रीकृष्णको साक्षात्कार होय ऐसो इनके ग्रंन्थनपैसूं दृष्टिगत होय है। और श्रीहरिरायजीको श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीके वचनपै पूर्णविश्वास हो तासूं ही इनकी संप्रदायमें महानुभाव शब्दसूं प्रसिद्धि है।

गो. श्रीहरिरायचरणके ग्रंथरत्न।

श्रीहरिरायजी के विशेषकरके छोटेछोटे ग्रन्थ हैं। परन्तु गम्भीर एवं रहस्यार्थ प्रकाश करवे वारे हैं। श्रीहरिरायजीके स्वतन्त्र ग्रन्थ आजतक १५४ एकसौ चोपन मुद्रित होचुके हैं। ये स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं तैसें कितनेही परतन्त्र ग्रन्थभी हैं। सिद्धान्तरहस्यादि षोडश ग्रन्थ की टीका एवं मधुराष्टकादिकी टीका, ये सब परतन्त्र ग्रन्थ हैं। षोडश ग्रन्थकी बहुतसी टीका सद्गत रा. रा. तेलीवालाके तरफसूं छपचुकीं हैं। अभीबहुतसी बाकी हैं। यह सिद्धान्तरहस्यकी टीका भी रा. रा. तेलीवाला की शोधित और मुद्रापित है। या टीकाके शोधनमें श्रम अच्छो कियो है। ग्रन्थको भाव काठिन्य होयवेसूं जो अर्थावगमसारल्यके लिये विराम आदि देवे योग्य हे सो यद्यपि नहीं दिये हैं तथापि शोधन सुन्दर भयो है यामें

सन्देह नहीं । श्रीहरिरायचरणके स्वतन्त्र किंवा परतन्त्र ग्रन्थनमे अनेक ग्रन्थनको गुर्जर तथा व्रजभाषा अनुवाद हो चुक्यो है ।

श्रीहरिरायचरणके बहुतसे ग्रन्थ वस्तु प्रतिपादक हैं, तथा बहुतसे निर्णयात्मक हैं और बहुतसे उभयात्मक हैं । यह सिद्धान्तरहस्यकी विवृति वस्तुप्रतिपादक भी है और निर्णयात्मकभी है । और श्लोकात्मक होयवेसूं अर्थकठिन भी है । याको यह व्रजभाषानुवाद दोवर्ष पहले, जासमय में या ग्रन्थकी व्याख्या करतो हो वासमय ही बनाय लीनो हो किन्तु कोई कारणसूं बुद्धि पूर्वकही प्रकाशित नहीं कियो हो ।

श्रीहरिरायचरण की प्रतिपादन शैली श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीकी शैली के समान है । सारगम्भीर और प्रस्फुट । आपकी वाणीमें हठादाकृष्टत्व नहीं है किन्तु सहज कवित्व है । केवल भेद इतनो ही है के श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीकूं लिखनो बहुत हो और समय थोडो तासूं एक एक पत्राके अर्थकूं समेट के एक पंक्तिमें लिखनो पड़ो । और याहीसूं आचार्यश्रीकी वाणी शब्दसारल्य रहते भी अर्थ और आशयमें कठिन है । गो. श्रीहरिरायचरण की वाणीमें आचार्यश्रीकी प्रतिपादनशैलीसाम्य रहते भी कछु विभेद है । आपके ग्रन्थनमें शब्द सरल हैं और अर्थ भी सरल है, किन्तु आशय कठिन है । चतुर्थ लालजी गो. श्रीगोकुलनाथजी की वाणीमें भी यही बात है । उनके शब्द सरल अर्थ सरल किन्तु आशय गम्भीर है । और याहीसूं इन दोनोनकी वाणीके समझवेमें कितने ही भूल खा जांय हैं । गो. श्रीहरिरायचरणने बहुतसे श्लोकात्मक ग्रंथ बनाये हैं । प्रथमं तो वाणी ही आशय कठिन और फिर वामें कारिकात्मक ग्रन्थ, और तदुपरान्त यदि अनवधान राखै तो भूल होनी सहज है । 'पुष्टिमार्गलक्षणानि' प्रभृति ग्रन्थ ऐसे ही हैं ।

श्रीमद्वल्लभाचार्यश्री सर्वत्र प्रमाणानुरोधि प्रमेय को प्रतिपादन करे हैं । ऐसें गो. श्रीगोकुलेशप्रभु. गो. श्रीहरिरायजी एवं श्रीपुरुषोत्तमजी भी प्रमाणानुरोधि प्रमेय को प्रतिपादन करें हैं । याहीसूं श्रीहरिरायजीने सिद्धान्तरहस्यकी या विवृतिमें वैदिक मर्यादा के परिपालन करवेको आग्रह

सुस्पष्ट प्रकट कियो है। श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रींसूं लेकें आजतक सर्व तद्वंशज आचार्यनमें वैदिक मर्यादाके परिपालनको आग्रह चलो आवे है। सिद्धान्तरहस्य एवं याकी टीकानमें भी प्रायःसब आचार्यनको आग्रह, वेदोक्त मर्यादा के परिपालन करवे में मालुम पडै है। या ग्रन्थमें प्रायःतीन निर्णय स्थूल स्थूल हैं। वेदोक्त मर्यादापालन, ब्रह्मसंबंध, और दोष निवृत्ति। तामें प्रथम निर्णय है वेदोक्त मर्यादा को परिपालन। इन तीनो निर्णयन के विषय में पूर्वाचार्यन को कहा मत है सो दिग्दर्शन करानो उचित है। श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीकी आज्ञा है के—

'निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कार्यमिति स्थितिः।

सि. रहस्य. कारि–५।

जिनने अपने प्रभुकूं आत्मनिवेदन कियो है उनने लौकिक वैदिक सब कार्य श्रीकृष्ण कें अर्पण करे पीछें ही अवश्य करने चहियें यह भक्तिमार्ग की मर्यादा है। '**कार्यम्**' शब्दमें आवश्यकार्थक ण्य प्रत्यय है, तासूं वैदिक कार्य भी अवश्य करने चहियें। समर्पण में भी **एव** कार लगायकें आवश्यक बतायो और करवेमें भी ण्य प्रत्यय लगायके आवश्यक **कह्यो है।**

या प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्यने वेदशास्त्रोक्तमयादा को पालन करवेकी स्पष्ट आज्ञा करी है। अब याकी टीका में श्रीगोकुलनाथजी कहा आज्ञा करें हैं सो सुनो—

'सर्वं' लौकिकं वैदिकं च। लौकिकं पुत्रादिविवाहाद्यर्थं ब्राह्मणभोजनाद्यर्थं स्वोपभोगार्थं च कृतं, वैदिकं श्राद्धयागादिकम्। श्राद्धार्थमपि निष्पादितं पाकादिकं सर्वं, यागार्थं सम्पादितं घृतान्नादिकं संभारादिकं च सर्वं, भगवते निवेद्यैव भगवन्निवेदनानन्तरं पश्चात्सर्वं कार्यमिति संभाराणां तदाज्ञापूर्वकमेव करणं निवेदनम्। तथा च श्रीभागवते सप्तमस्कंधे 'विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्। पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पितम्' इति वचनादियं भक्तिमार्गमर्यादा। मर्यादा नामानुल्लङ्घ्याज्ञा। यथा वेदादिमर्यादोल्लङ्घनेन कार्यकरणे कर्ता दोषभाग्भवति तथाऽत्रापि भक्ति-

मार्गमर्यादोल्लङ्घनेन कार्यकरणे भक्तिमार्गीयोपि दोषभाग्भवतीति ज्ञापनाय स्थितेर्मर्यादात्वमुक्तं '**स्थिति**' रिति ।

सिद्धा. रह. कारि. ५ की. टीका ।

ये श्रीगोकुलेशप्रभुकी टीका है । याके अक्षर अक्षर में वेदशास्त्रकी मर्यादाको पालन करवेको आग्रह स्पष्ट है । अब वैदिकमर्यादा पालन करवेके विषयमें श्रीहरिरायजी कहा कहैं हैं सो सुनो—

मार्गोऽत्र प्रथमं पुष्टिःसम्बन्ध वरणात्मिका ।
मध्ये वेदोक्तमर्यादायुतभक्तिस्थितौ स्थितिः ॥ १४ ॥
अपाषण्डित्वसिद्ध्यर्थं भगवत्तोषणाय च ।
फलपुष्टेर्योग्यतायै फलं कृष्णेन नान्यथा ॥ १५ ॥

ये कारिका आशय कठिन हैं तासूं इनको अर्थ लिखनो पड्यो है—अर्थात् श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकाशित या पुष्टिमार्गमें पहली पुष्टि संबंधस्वीकार है । पुष्टि नाम अनुग्रह । जो कोई ब्रह्मके साथ सम्बन्ध स्वीकार करै वाके सम्बन्धकूं प्रभु आप स्वीकार करलें हैं यह या मार्गमें प्रभुको प्रथम अनुग्रह है । मर्यादामें ये बात नहीं होय सकै । जाको संबंध जोई स्वीकार करै यह मर्यादा है । यदि प्रभुके साथ सम्बन्धको स्थापन होतो तब तो अनुग्रहकी आवश्यकता नहीं ही किन्तु श्रीहरिरायजीके मतसूं जीवको अक्षरब्रह्मके साथ सम्बन्ध होय है । ऐसी अवस्थामें वा सम्बन्धकूं अपने स्वीकार कर लेवेके लिये प्रभुकूं अनुग्रह करवेकी जरूरत है अक्षर ब्रह्मके संग किये संबंधकूं प्रभुने अपने स्वीकार करलेनो यह या मार्गमें प्रथमा पुष्टि है । असाधनकूं साधन करदेनो यह प्रभुको अनुग्रह है । यह साधन समयको अनुग्रह है ।

ताके अनन्तर मध्यमें अर्थात् ब्रह्मसंबंधभये पीछे फलप्राप्तिके पूर्व पूर्व वेदोक्तमर्यादासहित भक्तिमार्गीयमर्यादामें रहनो है । यदि पुष्टिमार्गीय भक्त ब्रह्मसंबंध भये पीछे वेदोक्तमर्यादा सहित भक्तिमर्यादामें न रहै तो पाषण्डि कहावै, वापै श्रीकृष्ण प्रसन्न नहीं होंय, और वाकी फलरूप पुष्टिके दानकी योग्यताभी नहीं होय । तासूं पुष्टिमार्गीयकूं अपने

अपाषण्डिरहवेके लिये, प्रभुके प्रसन्न करवेके लिये, और फलपुष्टिकी योग्यता सिद्धकरवेके लिये, वेदोक्त मर्यादा सहित भक्तिमर्यादामें रहनो ही चहिये।

याके आगे फिर श्रीहरिरायचरण लिखें सो सुनो—

यथा गायत्रोपदेशः संस्कारोत्तरमुच्यते ॥ ९७ ॥
श्रुतिस्मृत्युदिताचारस्तदभावे फलं न हि ॥
आचरेदित्यनेनाऽत्र ब्रह्मसंबंधतः परम् ॥ ९८ ॥
समर्पणं तथाचारो ह्यसमर्पित वर्जनम् ॥
तदभावेऽङ्गहीना तु सेवा नैव फलेदिह ॥ ९९ ॥

जैसे ज्ञानमार्गमें उपवीतसंस्कारके पीछे गायत्रीको उपदेश दियो जाय है तैसे ही श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकाशित या पुष्टिमार्गमें ब्रह्मसंबंधरूप संस्कार भये पीछे श्रुतिस्मृतिमें कहे आचारनको पालन करनो यह उपदेश है। यदि वेदोक्त मर्यादाको पालन न करै तो आगे होवेवारे फल न मिलें ॥ ९७ ॥ मूलमें श्रीमद्वल्लभाचार्यने '**आचरेत्**' ये पद दीनो है तासूं स्पष्ट होय के पुष्टिमार्गमें ब्रह्मसंबंधभये पीछे, श्रीकृष्णकूं आत्माआत्मीय पदार्थनको समर्पण, वेदोक्त आचारसहित भक्तिमर्यादाको पालन, तथा असमर्पितको त्याग ये तीन अवश्य कर्तव्य हैं। जो इन तीन कर्तव्यनको पालन न करै तो सेवा अङ्गहीन होय जाय और अङ्गहीन सेवाको कछु फल नहीं होय है ॥ ९८–९९ ॥

या प्रकारसूं कोई भी विद्वान् पूर्वाचार्यनकी वाणीसूं पुष्टिमार्गमें धर्मत्याग प्राप्त नहीं होय है।

श्रीहरिरायचरणको दूसरो निर्णय ब्रह्मसंबंध है। श्रीहरिरायचरणने पुष्टिमार्गमें दो संबंध माने हैं एक साधनसंबंध और दूसरो फलसंबंध। प्रथम सम्बन्ध साधनसम्बन्ध है। और दूसरो फलात्मकसंबंध है। श्रीहरिराय चरणके मतमें प्रथम साधनसम्बन्ध अक्षरब्रह्म संबंध है और दूसरो फलात्मकसंबंध श्रीकृष्णसंबन्ध है ऐसो मालुम पडै है। साधन सम्बन्ध अक्षर ब्रह्मके साथ होनो ही उचित है। और फलात्मक संबंध श्रीकृष्णके साथ होनो ही उचित है। श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीकूं भी ये ही मान्य है ऐसो

मालुम पडे है। और ताहीसूं आपने '**ब्रह्मसंबंध करणात्**' ऐसो वाक्य कहो है। जो श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीकूं अक्षर संबंध मान्य न होतो तो '**कृष्ण-संबंधकरणात्**' कहते। सो न कहके जो '**ब्रह्मसंबंध**' शब्द कह्यो, ताको कारण यही है के प्रथम साधनसम्बन्ध है और वह अक्षर ब्रह्मके साथ होनो ही उचित है। फलात्मक श्रीकृष्ण हैं तासूं फलसमयमें श्रीकृष्णको संबंध होयगो।

श्रीवल्लभाचार्यचरण श्रुतिसूं पृथक् एक अक्षरभी लिखनो नहीं चाहें हैं। श्रुतिमें कह्यो है '**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**'। या श्रुतिमें अक्षरब्रह्म साधन है और परब्रह्म फल है। पहले अक्षरब्रह्म साधनके साथ सम्बन्ध होयहै फिर परब्रह्म फलरूपके साथ सम्बन्ध होय है। वेदार्थकी मर्यादाकूं लेकेही आचार्यनने 'ब्रह्मसम्बन्ध' नाम राखो है। समाधिभाषा (भागवत) के निरोधस्कंधके तामसप्रकरणकी पचीसवीं अध्याके अन्तमें '**ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः**' आदिश्लोकनसूं भी प्रथम साधनरूप अक्षर ब्रह्मको सम्बन्ध कह्यो है तदनंतर श्रीकृष्ण संबंध २६ वे अध्यायमें कह्यो है। २६ वीं अध्यायके प्रारम्भकी कारिकामें श्रीवल्लभाचार्यचरणने 'ब्रह्मानन्दात्समुद्धृत्य भजनानन्दयोजने' यहां प्रथम अक्षर ब्रह्म सम्बन्ध की स्पष्ट आज्ञा करी हैं। तासूं श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीकूं भी अक्षर ब्रह्मके साथ ये प्रथम साधन सम्बन्ध रूप 'ब्रह्म सम्बन्ध है' यह संमत है। यदि सदाचारके तरफ निगाह दी जाय तो भी यह सम्बन्ध अक्षर ब्रह्म सम्बन्ध ही ठहरे है। श्रीकृष्णको एक चरण अक्षर ब्रह्मरूप है और दूसरो चरण मर्यादा (शास्त्रीय)भक्तिरूप है। ब्रह्मसम्बन्धके समयकी तुलसी प्रभुके चरणनमें समर्पी जायहै। और यह सदाचार सदासूं चलो आवे है। या सदाचारके प्रामाण्यसूं भी 'ब्रह्मसम्बन्ध' अक्षर ब्रह्मके साथ होय है ऐसो प्रतीत होय है। चरण और प्रभुको अनन्य सम्बन्ध है तासूं श्रीकृष्णके साथभी सम्बन्ध होय है यह भी यासूं ही सिद्ध होय है।

गो. श्रीव्रजाभरण दीक्षितजी अपनी गद्यटीकामें लिखे हैं के 'श्रीकृष्ण सम्बन्धस्तु अग्रे भावीति सिद्धान्तरहस्यकारिकासु व्याख्याने श्रीहरिराय

चरणैर्निरूपितम्' या पङ्क्तिसूंभी यही स्पष्ट होय है के यह प्रथम सम्बन्ध अक्षरब्रह्मसम्बन्ध ही है। और आगे फल समयमें जो सम्बन्ध होयगो सो कृष्ण सम्बन्ध होयगो।

श्रीहरिरायजी एक कारिकासूं नहीं किन्तु अनेक कारिकानसूं या सम्बन्धकूं अक्षरसम्बन्ध बतावें हैं, और फिर वाकी साधनामें अनेक दृष्टान्त और अनेक हेतु दें हैं। श्रीहरिरायजीने या बातकूं बडी दृढता पूर्वक कही है सो नीचेकी कारिकानसूं स्पष्ट होयगो—

स्वरूपेण समुद्धारस्तथा भक्त्यापि चैव हि।
व्यवस्था तत्र मन्तव्याऽवताराऽनवतारतः॥ २॥

इन कारिकानको अर्थ में विवृतिके अनुवाद करते समय करि आयो हूं तासूं वहासूं देख लेनो। या कारिका में अनवतार समय में स्वरूपसम्बन्धसूं नहीं किन्तु भक्तिसूं ही प्रभु उद्धार करे हैं यह कह्यो है। भक्ति के दोदल हैं एक माहात्म्यज्ञान दूसरो प्रेम, ज्ञान अक्षरब्रह्म है वह प्रेम को साधन है तासूं प्रथम साधन सम्बन्ध होनो उचित है ऐसो अन्तःसूचन निकसे है।

श्रावणः पुष्टिमार्गीयश्चातुर्मास्यगतत्वतः। १७।
विष्णुसम्बन्धिसम्बन्धात्सम्बन्धख्यापको मतः।

यहां यह दिखायो है के प्रभु के प्राकट्य में श्रावणमास पुष्टिमार्गीय है किन्तु अक्षर ब्रह्म दैवत्य चातुर्मास्यमें आयवेसूं कछु अक्षर ब्रह्म के साथ भी याको सम्बन्ध है। यासूं आगें जातरहको सम्बन्ध मानो है बाकी सूचना करी है।

बोध्यते तेन पुष्टिर्हि सम्बन्धवरणात्मिका। १८।

यहां सम्बन्ध स्वीकार में पुष्टि कूं कारण बताई है तासूं प्रथम सम्बन्ध अक्षरसम्बन्ध है यह सूचित होय है।

आदौ सम्बन्धकरणं कन्ययेव स्वयंवरे।
स्वस्य सर्वपदार्थानां मनसा तेन योजनम्॥ २६॥

यह कारिका दृष्टान्त द्वारा अक्षर सम्बन्धकूं बतावे है। याको अर्थ हम विवृति में कर चुके हैं।

सम्बन्धश्चापि निर्दोषस्तथा सर्वसमः स्मृतः । २७ ।
वह्नेरिवेति बोधाय प्रोक्तं ब्रह्मपदं पुनः ।
'निर्दोषं हि समं ब्रह्मे' त्यत्रोक्तं तत्तथाविधम् । २८ ।

गीतोपनिषत् में 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म' या श्लोक में अक्षरब्रह्मकूं निर्दोष और सम कह्यो है और 'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्' इत्यादि श्लोकनमें श्रीकृष्णकूं विषम कहे हैं। प्रभुमें वैषम्य दोष नहीं है तथापि प्रभु को स्वरूप विषम है। तासूं सम्बन्ध होयवेके लिये अक्षर सम्बन्ध ही उचित है यह या कारिकामें कह्यो है।

स्यात्प्रयुक्ते कृष्णपदे विषमत्वं गुणाहितिः ।
सम्बन्धे तादृशापेक्षा नास्ति दोषनिवारणात् ॥ २९ ॥

या कारिकामें यह कह्यो है के ब्रह्म सम्बन्धकूं जो कृष्ण सम्बन्ध कहते तो कृष्ण शब्द को विषमत्व और सुकल्याण गुण सहितता व्यर्थ हो जाती अथवा सम्बन्ध में आजाती। या समय तो केवल दोष निवारण की ही जरूरत है तासूं श्रीकृष्ण की कोई आवश्यकता नहीं है। अथवा विषमत्व और गुणाधान की प्रथम सम्बन्ध में अपेक्षा नहीं है। यह कहवे सूं भी यह प्रथमसम्बन्ध अक्षरसम्बन्ध हैं यह स्पष्ट होय है।

दोषमात्रनिवृत्त्यर्थं ब्रह्मसम्बन्ध उच्यते ।
गुणाधायकसम्बन्धः फलसामयिको मतः ॥ ३० ॥

या कारिकारमें प्रथम सम्बन्ध दोष निवृत्त्यर्थ है किन्तु कृष्णसम्बन्ध फलसमयमें होयगो। यह कहें हैं ॥

तस्मिन्वाच्ये कृष्णपदं वाच्यं कृष्णः फलात्मकः ।
तत्संबन्धे स्वतः सिद्धे फलसंसिद्धिसंभवात् ॥ ३१ ॥
अपरा कृष्णसेवादिकृतिर्वैयर्थ्यमाप्नुयात् ।
अतः साधनसम्बन्धो विवाह इव लौकिके ॥ ३२ ॥

फलात्मक संबंध जब होय गो तब वाको वर्णन करते समय कृष्ण-शब्द कहेंगे जो अभी वाकी सिद्धि मानलें तो कृष्णसेवा प्रभृति मार्गही

व्यर्थ होजाय तासूं यह प्रथमसम्बन्ध साधनसम्बन्ध है । लौकिकमें विवाहकी तरह । इतने कहवेसूं भी यह सम्बन्ध अक्षर सम्बन्धही ठहरे है ।

विषमश्च हरिः कृष्णो न यायात्समतां यतः ।
हेतुसम्बन्धसम्बन्धात्कृष्णः साधनतां गतः ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण विषम हैं, सम नही हैं । तासूं प्रथम सम्बन्ध सम होयवेसूं अक्षरसम्बन्ध ही है किन्तु हेतु (अक्षर) के साथ श्रीकृष्णको सम्बन्ध है तासूं श्रीकृष्ण भी साधनताकूं प्राप्त भये हैं । यासूं भी प्रथम सम्बन्धकूं अक्षरसम्बन्धता सिद्ध होय है ।

या प्रकार श्रीहरिरायजीके मतमें यह प्रथम सम्बन्ध साधन (अक्षर) मान्यो है । और सब पूर्वाचार्य या सम्बन्धकूं कृष्णसम्बन्धमाने हैं । श्रीपुरुषोत्तमजी या प्रथम सम्बन्धकूं साधन और फल सम्बन्ध ऐसे द्विविध माने हैं यह बात उनकी टीकाके अभ्यासी विद्वानकूं स्पष्ट होय सके है । श्रीगोकुलनाथजी प्रभृति आचार्य या सम्बन्धकूं कृष्णसम्बन्ध माने हैं किन्तु यह बातभी ठीक है क्यों कि अक्षरद्वारा श्रीकृष्णने ही या सम्बन्धको स्वीकार कियो है । और याहीसूं श्रीहरिरायजीने 'हेतुसम्बन्धसम्बन्धात्कृष्णः साधनतां गतः' और 'मार्गेऽत्र प्रथमं पुष्टिः सम्बन्धवरणात्मिका' यह दोनो बात कही हैं ।

श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीभी स्पष्ट '**श्रीकृष्णसंबंध**' न कहके जो '**ब्रह्मसंम्बन्ध**' शब्द कहें है तासूं कछु उनके भी हृदयमें ब्रह्मद्वारा श्रीकृष्णसंबंध है ऐसो मालुम पडे है ।

श्रीमद्वल्लभाचार्य, श्रीगोकुलनाथजी प्रभृति अन्य आचार्य, और श्रीहरिरायजी तथा वेद भागवत आदिके वचनकी एक वाक्यता करके मेरी समझमें तो यह स्पष्ट होय है के यह ब्रह्मसंबन्ध संस्कारात्मक है और अक्षरब्रह्मके द्वारा श्रीकृष्णसुं होय हैं । श्रीकृष्ण, अनुग्रहके द्वारा याको स्वीकार करें हैं । या मान्यतामें सब आचार्यनकी एक वाक्यता होयजाय हैं

जा समय श्रीहरिरायजीकी सिद्धान्तरहस्यकी या विवृतिकी में व्याख्या करतो हो वा समय कितने ही वैष्णवनने कछु शंका प्रकट करी हती,

और चाहे अब भी उनकूं सन्देह होय किन्तु मेरो यामे अणुमात्र दोष नहीं है। शब्दमर्यादासूं कारिकानमें मोंकूं जो अर्थ मालुम भयो सो मैंने कियो है।

तृतीय निर्णय दोषनिवृत्तिको है। गो. श्रीरघुनाथजी, गो. श्रीकल्याणरायजी, गो. श्रीगोकुलोत्सवजी, गो. श्रीहरिरायजी, गो. श्रीविट्ठलेश्वरजी, गो. श्रीपुरुषोत्तमजी और गो. श्रीगिरिधरजी, को दोष निवृत्तिके विषयमें यह मत मालुम होय है के 'ब्रह्मसंबन्ध करे पीछे पांच दोषनकी कार्यतः निवृत्ति होय है; स्वरूपतः निवृत्ति नहीं होय है। स्वरूपसूं तो वे दोष रहे हैं तथापि सेवामें बाध नहीं करें हैं'।

और गो. श्रीगोकुलेशप्रभु, गो. श्रीव्रजोत्सवजी, श्रीलालूभट्टजी और श्रीशाचार्यमतानुवर्ति को या विषयमें यह मत मालुम पडे है के 'ब्रह्मसंबंध भये पीछे दोषनकी सर्वथा निवृत्ति हो जाय है'

यद्यपि ये दोनो मत परस्पर विरुद्धसे दीखे हैं तथापि विरोध नहीं है। श्रीगोकुलेशप्रभु प्रभृतिनको फलात्मक ब्रह्मसंबंधके विषयमें ये निर्णय है और श्रीहरिरायजी प्रभृतिको साधनात्मकब्रह्मसंबंधके विषयमें ये निर्णय है ऐसे दोनो मत अविरुद्ध हैं।

यह अनुवाद रा. रा. तेलीवालाकी मुद्रापित टीकाके ऊपरसूं कियो गयो है। वामें अनेक जगह प्राचीन टिप्पणीभी ही किन्तु यहां वाको उतनो उपयोग न समझकें सर्वत्र नहीं दीनी है।

या पुस्तकके मुद्रापणको सर्वव्यय मुंबईबृहन्मन्दिराधीश्वरगोस्वामि श्रीगोकुलनाथजी महाराजकी आज्ञासूं हरिगुरुसेवापरायण माणसावारे शा. गिरिधरदास प्रभृति वैष्णवनने दियो है सो उनकूं अनेक धन्यवाद हैं। उनकी विशेष सेवा परमवैष्णव सेठ गिरिधरदास गुलाबचंदने करी है। उनकी यह सेवा चिरस्मरणीय रहैगी।

अनुवाद कर्ता.

देवर्षिरमानाथ शास्त्री.

॥ श्रीहरिः ॥

अखण्डभूमण्डलाचार्यदैवजीवोद्धारपरायण
जगद्गुरुश्रीमद्वल्लभाचार्यचरणप्रणीतं

सिद्धान्तरहस्यम् ।

मूलम्

श्रावणस्यामले पक्ष एकादश्यां महानिशि ।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥ १ ॥

श्रीहरिरायचरणोदिता विवृतिः ।

अथ श्रीवल्लभाचार्यचरणाविष्टचेतसा ।
कारिकाभिः स्वसिद्धान्तरहस्यार्थो विविच्यते ॥१॥

अन्वयार्थौ ।

अथ अब, **श्रीवल्लभाचार्यचरणाविष्टचेतसा** (मया) श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणसूं आविष्टचित्तवारो में श्रीहरिराय, **कारिकाभिः** सूत्र जैसे श्लोकनसूं, **स्वसिद्धान्तरहस्यार्थः**—पुष्टिमार्गीयसिद्धान्तके सिद्धान्तरहस्यको अर्थ, **विविच्यते**—विवरणरूपसूं करूं हूं ।

भाषा-विवरण ।

प्रश्नोपनिषद्में **'आचार्य देवो भव'** 'आचार्यकूं परमात्मा माने,' ऐसी श्रुति है । तदनुसार श्रीहरिरायजीने श्रीवल्लभशब्दको प्रयोग कियो है । वल्लभ शब्द को प्रिय अर्थ है । **'नृप स्वात्मैव वल्लभः'** या वचनके अनुसार जीवमात्र के वल्लभ—परम प्रिय भगवान् ही हैं । श्रीशब्द के संग देवेसूं लीलापरिकर स्वामिनी प्रभृति को नित्यसंयोग बतायो है । ऐसें श्रीवल्लभशब्दसूं श्रीवल्लभाचार्य साक्षात् श्रीपुरुषोत्तमको अवतार हैं यह सूचित कियो । यामे इतनो प्रश्न होय है के श्रीपुरुषोत्तम निरंकुशैश्वर्य हैं । काम क्रोधादि जो जीवोद्धारकरवेमें असाधन हैं उन्हें भी साधन करदेनो यह निरंकुशैश्वर्य को स्वरूप है । सो यदि वल्लभाचार्य भी साक्षात् पुरुषोत्तम हैं तो फिर मर्यादाभङ्गकी प्राप्ति होय है । या संदेहकूं दूर करवेके लिये श्रीहरिरायजीने **आचार्य** पद दियो है । वेदोक्त अर्थ में सब भगवच्छास्त्रनको समन्वय करे, ताके अनुसार अपने आचरण राखे और वाही शास्त्रीय मर्यादामें लोककूं चलावै वह आचार्य कह्यो जाय है । यद्यपि श्रीवल्लभाचार्य भगवान् है, तथापि आचार्यरूपसूं प्रकट भये हैं । तासूं सर्वसामर्थ्य रहते भी आपके सर्व आचरण शास्त्रोक्त मर्यादासूं मर्यादित हैं । **आविष्टचेतसा** पदसूं यह दिखावें हैं जो

जीव कितनो ही समर्थ विद्वान् होय परन्तु जहांतक आचार्य कृपा न करैं वहांतक वेदादिशास्त्रके गूढ सिद्धान्त मनमें नहीं आवें हैं । मेरे भी हृदयमें श्रीमदाचार्यचरणने प्रवेश कियो है तासूं ही मे सिद्धान्त रहस्यको विवरण कर सकूंगो । सूत्रकी तरह थोडे अक्षरनमें साररूप बहुतसे अर्थको प्रकाश करै वह श्लोक कारिका कह्यो जाय है । सो में कारिकानसूं सिद्धान्तरहस्यको अर्थ स्पष्ट करूं हूं ।

विवृतिः ।

स्वरूपेण समुद्धारस्तथा भक्त्यापि चैव हि ।
व्यवस्था तत्र मन्तव्याऽवतारानवतारतः ॥ २ ॥

अन्वयार्थौ ।

स्वरूपेण—तीनप्रकारके भगवत्स्वरूपसूं, **समुद्धारः** (भवति)—जीवनकूं लीलाविशिष्ट प्रभुकी प्राप्ति होय है । **तथा**–वाहीतरहकी, **भक्त्या अपि च**–भक्तिसूं भी, **एव हि**–किन्तु शुद्धभक्तिसूं, **तत्र**-स्वरूप और भक्तिसूं होते समुद्धारमें, **अवतारानवतारतः**–अवतारदशा और अनव–तारदशासूं, **व्यवस्था**–संगति, **मन्तव्या** माननी चहिये ।

भाषाविवरण ।

श्रीमद्वल्लभार्यके सम्प्रदायमें मुख्य गौण भेदसूं तीन फल हैं अक्षर प्राप्ति (गणितानन्दप्राप्ति), चार प्रकारकी मुक्ति, और लीलाविशिष्ट अगणितानन्दप्रभुकी स्वतन्त्रतासूं प्राप्ति ।

उनमें अक्षर प्राप्ति, जाकूं मोक्ष और दुःखाभाव भी कहें हैं वह अवान्तर फल है। वह तो 'अनिच्छतो गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते' या वाक्यके अनुसार अनुगृहीत जीवनकूं 'ग्रामं गच्छंस्तृणं स्पृशतिवत्' स्वतः प्राप्तहो जाय है। ताके लिये स्वतन्त्र साधनकी आवश्यकता नहीं हैं। औरप्रकारकी मुक्ति की तो अनुगृहीत भक्तही इच्छा नहीं राखे हैं। तासूं मुख्यफल तीसरो गिन्यो है। वह समुद्धार रूप फल स्वरूपसूं और भक्तिसूं प्राप्त होय है। किन्तु वामें यह व्यवस्था है–जा समय श्रीकृष्ण प्रकट बिराजें वा समय स्वरूपसूं समुद्धार होय और जा समय प्रकट नहीं बिराजे वा समय भक्तिसूं समुद्धार होय है।

विवृतिः।

अवतारे त्रिधा रूपमवतीर्णं तथा रसः।
पूर्वस्तथा मूलरूपं तत्पारोक्ष्यं हि सर्वथा ॥ ३ ॥

अन्वयार्थौ।

अवतारे–जा समय प्रभु प्रकट विराजें वा समय, **त्रिधा**–तीनप्रकार को, **रूपं** प्रभुको स्वरूप है। **अवतीर्णं**–प्रथम वह जो बाहर प्रकट होय के बिराजे है, **तथा**–दूसरो, **पूर्वः रसः**–संयोगशृङ्गाररसात्मक, **तथा**–और तीसरो, **मूलरूपं**–(अस्तीति शेषः) विप्रयोगरसात्मक है। **हि**–यह निश्चय हे के या समय, **सर्वथा**–सबतरहसूं, तत्पारोक्ष्यम्–(अस्ति) उन तीनो रूपनको अन्तर्धान है।

भाषा–विवरण ।

'रसो वै सः' 'वह भगवान् रसरूप है' इत्यादिश्रुतिनके अनुसार श्रीपुरुषोत्तम भगवान् रसरूप हैं यह सिद्ध है। आनन्दको ही नामान्तर–रस है । आनन्द रूप रसरूप श्रीहरि हैं यह सर्वशास्त्र सिद्ध बात है । साहित्यवेत्ता और कविननेभी रसके अधिष्ठाता देव श्रीकृष्णकूं ही माने हैं। रस दिव्य-अलौकिक है, शुद्ध है । काम लौकिक और अशुद्ध है । श्रीकृष्ण रसस्वरूप हैं तासू उनमें कामको स्पर्शभी नहीं है । साहित्यवेत्ताननें रस को यातरह वर्णन कियो है–'विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः । एषा कृष्ण-रतिः स्थायिभावो भक्तिरसो भवेत्' अर्थात् आलम्बनविभाव (श्रीकृष्णप्रभृति) उद्दीपनविभाव (श्रीवृन्दावन आदि) अनुभाव (अनेकप्रकारकी लीला) सात्विकभाव (स्तम्भ–स्वेद आदि) और संचारिभावों (मूर्च्छाप्रभृति) के द्वारा परिपुष्ट जोकृष्णरतिरूप स्थायिभाव वही भक्तिरस कह्यो जाय है। रसको, बालस्वरूप कृष्णरति किंवा स्थायिभाव है, कैशोर-स्वरूप, शृंगारको पूर्वदल संयोग है, और पूर्णयुवस्वरूप शृंगारको उत्तरदल वियोग है । तीनो एक हैं तथापि अव-स्थाको भेद है।

रसकी बालअवस्था स्थायिभाव, कैशोरअवस्था संयोग है, और युवावस्था वियोग है । वियोग ही रसकी परिपूर्ण और अगम्य अवस्था है। अत एव वह मूलरूप कह्यो जाय है।

रसकी प्राकट्य अवस्थामें वाकी लीलाऐं(लहरें)तिरोभूत हैं तासूं वह रति वा भाव कहावे है। रसकी जो लीलाऐं कैशोर और युवावस्थामें प्रकट होय हैं वे सब वाकी प्राकट्य अवस्थामें भी अनागन्तुक रूपसूं वहीं ही विद्यमान हैं किन्तु तिरोभूत हैं। वही पूर्ण रसरूप मूलस्वरूप श्रीपुरुषोत्तम जब अवतार ग्रहण करे है तब श्रीकृष्ण कह्यो जाय है। यह अवतीर्ण रूप हैं। यही प्रभु, अनुगृहीत दैवजीवनके हृदयमें कृष्णरति किंवा स्थायिभाव रूपसूं बिराजे है। बाहर प्रकट रूपमें बिराज तो यह प्रभु अवतीर्णरूप है और यही भक्तनको आलम्बनविभाव है। और जो भक्तनके हृदयमें अतिलीन अवस्थासूं बिराजे है वह स्थायिभावरूप है। यही स्थायिभावरूप जब आलम्बनरूपकी लीलानके द्वारा पुष्ट होय है तब रस रूपताकूं प्राप्त होय है और जब परिणत और अगाधता कूं प्राप्त होय है तब वियोगरसात्मकता किंवा अपनी मूलरूपता में आजाय है। वेदमें 'यतो वाचो निवर्तन्ते' इत्यादि श्रुतिनसूं रसको स्वरूप अचिन्त्य और अमेय कह्यो है। और यह बात भक्तिरसके उत्तर दल विप्रयोगमें प्राप्त होय है। विप्रयोग में अचिन्त्यता और अगणिता है तासूं वह मूलस्वरूप है। रसको पूर्वदल संयोगरसभी पूर्ण है तथापि विप्रयोगकी अपेक्षा वामें अमेयता और अचिन्त्यता तिरोहित है। या प्रकार प्रभुके तीनरूप हैं। अवतीर्ण श्रीकृष्ण, आनन्द को

पूर्वदल संयोगानन्द, और तृतीय अगणितानन्द विप्रयोगानन्द । आजकाल इनतीनों प्रकारके स्वरूपनको तिरोधान है । वामें कारण बतामें हैं ॥ ३ ॥

विवृतिः ।

वैकुण्ठगमनान्नित्यमवस्थानस्थितेरपि ।
लीलाविशिष्टरूपेण हृदयैकप्रवेशतः ॥ ४ ॥

अन्वयार्थौ ।

वैकुण्ठगमनात्–व्यापिवैकुण्ठमें पधारवेसूं, **नित्यं**–सदा, **अवस्थानस्थितेः अपि**–अपने लोकमें स्थित हो जायवेसुंभी, **लीलाविशिष्टरूपेण**–लीलासह रूपसूं, **हृदयैकप्रवेशतः**–हृदय में ही प्रवेश करवेसूं ; सर्वथा तत्पारोक्ष्यम्–सब तरह उनतीनो स्वरूपनको अन्तर्धान है।

भाषा–विवरण ।

जहांतक अवतीर्णरूप विराजे वहांतक रसके दोनों दल बहार प्रकट रहैं और जब आलम्बन विभाव रूप अवतीर्णस्वरूप छिप जाय तब रसके दोनो दलभी अपने अपने ठिकाने चले जांय यह रसमर्यादा है । जब लीलासहित श्रीकृष्ण व्यापिवैकुण्ठ पधारे तब विप्रयोगरसने भी लीलासहित अपने नित्य अवस्थान पूर्वरसमें स्थिति करी । लीला सहित विप्रयोगरस संयोग रसमेसूं ही प्रादुर्भूत होय है और संयोगरसमें ही वाही तरहसूं अन्तर्हित होय जाय है यह रसशास्त्र कहे है।

और श्रीकृष्णरूप आलम्बनके प्रकट न रहवेसूं ही संयोगानन्दभी अन्तर्हित हो जाय है । वाकी अवस्थानस्थिति हृदयमें है । पूर्वरसको लय स्थायिभावमें हौय है और वह अनुगृहीत जीवनके हृदयमें प्रवेश करे है । एसें तीनो रूपनको अन्तर्धान होयवेसूं आजकल सर्वथा पारोक्ष्य है ॥४॥

विवृतिः ।

इदानीन्तनजीवानामुद्धृतिस्तु कथं भवेत् ।
विचार्यकृपया कृष्णो भक्त्याऽऽविष्करणोद्यतः ॥५॥

अन्वयार्थौ ।

इदानीन्तनजीवानां–आजकालके जीवनको, **उद्धृतिः तु**–उद्धार तो, **कथं**–कैसें, **भवेत्**–होय, (इति) **विचार्य**–ऐसें विचार कें, **कृष्णः**–श्रीकृष्ण, **कृपया**–कृपा करके, **भक्त्याविष्करणोद्यतः** (अभूत्)–भक्तिमार्ग के प्रकट करवे को उद्यम करवे लगे ।

भाषा-विवरण ।

तीनो प्रकारके स्वरूपको या समय अन्तर्धान होयवेसूं आजकाल के अनुगृहीतजीवनको उद्धार कौन प्रकारसूं करनो ऐसें प्रभुकूं विचार भयो, तब कृपाकरकें यह निश्चय कियो जो लोक में भक्ति को प्रचार होय तो भक्ति के द्वारा उद्धार होयगो। भक्तिको प्रचार, समर्थ आचार्य के बिना होय नहीं तासूं श्रीमद्वल्लभाचार्यकूं प्रकट किये यह आगे की कारि-

कामे स्पष्ट है। पहलें भक्तिमार्ग कितने प्रकार को है सो कहें हैं ॥ ५ ॥

विवृतिः ।

पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदैः सा त्रिविधा मता ।
मध्या श्रुतिपुराणेषु सर्वत्र विनिरूपिता ॥ ६ ॥

अन्वयार्थौ ।

सा–वो भक्ति, **पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदैः**–पुष्टि प्रवाह और मर्यादा के भेदसूं, **त्रिविधा**–(अस्ति) तीनप्रकार की है । **मध्या**–प्रवाहभक्ति, **श्रुतिपुराणेषु**–वेद और अन्यपुराणनमें, **सर्वत्र** सब जगह, **विनिरूपिता**–कही है । अर्थात्–परोक्ष रीतिसूं नहिं किन्तु खुलासा रीतिसूं वर्णित है ।

भाषा–विवरण ।

पुष्टि प्रवाह और मर्यादा जब जुदे जुदे केवल रहें तब भगवद्धर्म हैं। और जब स्वल्प बहुल भावसूं एक दूसरे में मिलके रहें तब मार्ग कहे जाय हैं। यही भक्ति ज्ञान कर्म में भी समझनो चहिये। भक्ति ज्ञान और कर्म जब परस्पर अमिश्र भावसूं केवल रहैं तब भगवद्धर्म हैं और जब एक दूसेर में मिलकें परिच्छिन्न रूप में प्रकट होंय तब भक्ति-

१–दो उपसर्ग देवे को आशय है कि वेद में शुद्धभक्तिको भी वर्णन है पर वह परोक्ष रीतिसुं, सूक्ष्म और क्वचित् है। किन्तु प्रवाह भक्ति को वर्णन विशद, सर्वत्र, और खुलासा रीतिसुं सर्व साधारणकी समझमें आवे ऐसी तरहसुं है।

मार्ग ज्ञानमार्ग कर्ममार्ग, या तरह मार्ग कहे जाय हैं । याही तरहसूं पुष्टिमें जब प्रवाहको मेल होय तब वह पुष्टिप्रवाह-मार्ग कहावे । पुष्टिमें मर्यादाके मिलवेसूं वह पुष्टिमर्यादामार्ग कह्यो जाय । और जब पुष्टिमें पुष्टिको संयोग होय तब वह पुष्टिपुष्टिमार्ग कह्यो जाय है । जामार्गमें जाकी विशेषता होय वाको प्राधान्य होयवेसूं वहां वाको नाम प्रथम रखनो । जैसे–पुष्टिको प्राधान्य होय तो पुष्टिमर्यादा, और मर्यादा को प्राधान्य होय तो मर्यादापुष्टि । पुष्टिपुष्टिभक्तिमार्गही सर्वप्रधान है । और याके उदाहरण भगवत्स्वामिनी हैं । या विषयमें विशेष जिज्ञासा होय तो अन्य प्रकरण ग्रन्थ देखने ।

श्रीमदाचार्य एवं तद्वंशजगोस्वामिविद्वाननके ग्रंथनको निरीक्षण करवेसूं यह स्पष्ट है कि मुख्य भक्ति और भक्तिके अंग सब वेदोक्त हैं । और यहां श्रीहरिरायजी लिखे हैं कि मध्या अर्थात् प्रवाह भक्ति वेद और पुराणन में सर्वत्र कही है, अर्थात् पुष्टिभक्ति और मर्यादाभक्ति श्रुतिपुराणन-में नहीं है; यह परस्पर विरोध आवे है, ऐसें जो कोईके मनमें संदेह होतो होय तो वाको इतनो ही उत्तर है के यद्यपि वेदमें पुष्टिभक्तिको वर्णन है तथापि वह निरूपण परोक्षरीतिसूं है सूक्ष्म है, और क्वचित् क्वचित् है । और प्रवाहभक्ति को स्पष्ट रीतिसूं विशद और सर्वत्र निरूपण है । यह बात या श्लोक के **'सर्वत्र'** विनिरूपिता शब्दसूं विदित होय है । यहां **श्रुतिपुराणेषु**

इतने मात्रसूं ही कार्य चलतो हो 'सर्वत्र' शब्द कहवेकी अपेक्षा नहीं ही और 'सर्वत्र' शब्द वास्तव में अर्थपोषक भी नहीं है तथापि जो यहां 'सर्वत्र' शब्द राख्यो है ताको तात्पर्य यही है जो वेदमें सपरिकर रसरूप ब्रह्म को निरूपण है । और पुष्टिभक्ति रसरूप ब्रह्मकी किरण है तासूं वाको भी निरूपण वेदमें है ही तथापि वह वर्णन परोक्ष रीतिसूं और क्वचित् क्वचित् है सर्वत्र नहि । अति अभीष्ट अति गोप्य वस्तुको वर्णन वेद परोक्षरीतिसूं और क्वचित् क्वचित् करै यह वाको स्वभाव है । **'परोक्षप्रिया ह वै देवाः'** श्रुतिः । किन्तु प्रवाहभक्ति को वर्णन वेदमें **सर्वत्र** है । उपासना और प्रवाह भक्ति प्रायः एकही हैं और वह उपासना वेदमें प्रत्यक्षरीतिसूं सर्वत्र कही है यह बात वेदको अभ्यास करवेवारे विद्वाननकूं विदित ही है । कितनेही रसिकत्वेन आकुलित आग्रहाविष्ट समझ रहे हैं कि सम्प्रदायमें उपासना कोई वस्तुही नहीं है किन्तु यह उनकी भूल है, यदि सम्प्रदायमें उपासना कोई वस्तुही न रहै तो फिर श्रीमद्वल्लभाचार्यके मतमें वेदके उपासना-निरूपक भागकूं असत्य (कल्पित) और अप्रमाण माननो पड़ैगो सो होय नहीं सकै है, श्रीमद्वल्लभाचार्यके मतमें वेदको एक अक्षर भी असत्यार्थ और अप्रमाण नहीं है यह उनके ही वचननसूं सिद्ध हैं । तासूं श्रीमद्वल्लभाचार्य के मतमें उपासना कहा पदार्थ है यह जिज्ञासा होय तो वाको

उत्तर इतनो ही है के अन्यमतमें जो उपासनाको अर्थ करें हैं सो नहिं । पुष्टिसम्प्रदायमें भी उपासना तो है किन्तु जो अन्यमतवारे समझे हैं सो नहि । वे लोग ये कहैं है कि 'तत्व रहिते वस्तुनि तत्वमारोप्योपचारकरणमुपासना' 'वापनेसूं रहित पदार्थमें वापनेको आरोप करके सत्कारादि करनो यह उपासना कहावे है । जैसे अन्न ब्रह्म नहीं है तथापि वामें ब्रह्मपनेको आरोपकरके जो सत्कारादि करनो वह उपासना है । और भी जैसे मूर्ति ब्रह्म नहीं है तथापि मूर्ति में ब्रह्मत्वको आरोप करके जो उपचार किये जांय वह उपासना है । किन्तु श्रीमद्वल्लभाचार्यके मतमें यह बात वेद विरुद्ध है क्योंकि ब्रह्म प्रत्यक्ष किंवा लौकिक गम्य नहीं है वह केवल वेदसूं ही ज्ञातव्य है और वेद तो जगद्वर्ती समग्रपदार्थनकूं ब्रह्मरूप बतावे है । वेद प्रामाण्यवादीकूं ब्रह्मके विषयमें जैसें वेद कहै वैसे माननो ही चहिये । जब वेद सर्व पदार्थनकूं और अन्यत्र अन्नकूं ब्रह्म कह रह्यो है तो फिर वे पदार्थ और अन्न ब्रह्म है यही माननो ठीक है, और ऐसी अवस्थामें 'तत्वरहित पदार्थमें वापन को आरोप०' इत्यादि उपासनाको स्वरूप बतानो ठीक नहीं है । किन्तु 'तत्वसहिते पदार्थे तत्त्वं मत्वोपचारकरणमुपासना' 'वापन सहित पदार्थमें वापनकूं मानकें उपचारादि करने यह उपासनाको स्वरूप वेदानुकूल है । यदि कहोकि यामें प्रत्यक्ष को विरोध आवे है तो वाको उत्तर इतनो ही है कि जो

वस्तु प्रत्यक्षगम्य होय वामें ही प्रत्यक्ष को विरोध मान्यो जाय है और जो वस्तु प्रत्यक्ष गम्य ही नहीं है केवल शब्द-गम्य है वहां प्रत्यक्षको विरोध देनो अकिंचित्कर है। रसको ग्रहण रसनेन्द्रियसूं ही होय है तो वाकी परीक्षा रसनेन्द्रियसूं ही करनो ठीक है किन्तु सो न करके वाकी परीक्षा चक्षु इन्द्रियसूं करवे जाओ तो कहां सूं होय। और रस परीक्षामें यदि चक्षु इन्द्रियको विरोध या बाध आवतो होय तो वह अकिंचित्कर है, अमान्य है। एक बात और है—दिनमें तारे, अति दूर होय वेसूं उडतो कबूतर, तिलमें तैल, और भींतके पीछे की वस्तु, प्रत्यक्षसूं नहीं दीखे हैं किन्तु आवरण दूर होय वे सूं दीखवे लग जांय हैं ऐसे हीं मूर्तिमें अन्नमें और सम्पूर्ण जगत् में ब्रह्मपनो है किन्तु अविद्यादि आवरण आयवे सूं प्रत्यक्ष नहीं होय है जादिन अविद्या हट जायगी वादिन ब्रह्मत्व मालुम पड जायगो। तासूं ब्रह्मत्वकी परीक्षा करते समय प्रत्यक्ष को विरोध देनो ठीक नहीं। वेद कहै सोही ठीक है। और तासूं ही 'मूर्तिकूं भगवान् मानकें उपचार करनो ही उपासना को स्वरूप ठीक है, वेदानु-कूल है। और या गूढभक्ति उपासनाको वर्णन श्रुति और अन्यपुराणन में कियो है सो ठीक है। मोक्षकी इच्छासूं करवे में आवे वह भक्ति उपासना ही है॥ ६॥

विवृतिः।

द्वयोर्निरूपणार्थं हि श्रीभागवतसंभवः ॥
व्यासावतारोपि हरेरेतदर्थक एव हि ॥ ७ ॥

अन्वयार्थौ।

द्वयोः–मर्यादाभक्ति और पुष्टिभक्तिके, **निरूपणार्थं**–निरूपण करवे के लिये, **श्रीभावतसंभवः**–श्रीमद्भागवत-ग्रन्थ को प्रादुर्भाव भयो, **हि**–यह ठीक है। **हि**–और ये भी ठीक है के, **हरेः**–भगवान् को, **व्यासावतारः**–व्यासरूपसूं प्रकट होनो, **एतदर्थकः एव**–या कार्य के लिये ही हो।

भाषा–विवरण।

भक्तिको प्रचार होयवेके लिये प्रभुकी ज्ञानकलाको अवतार व्यासभगवान् प्रकट भये उनने प्रथम भारत तथा अन्य पुराणन में वेद की तरह परोक्षरीतिसूं भक्तिको निरूपण कियो तब प्रभुने नारद के द्वारा व्यासजीकूं श्रीभागवत को दान कियो। व्यासजीने श्रीभागवत को प्रादुर्भाव कियो। और वा श्रीभागवत में मर्यादाभक्तिको साधनसहित निरूपण कियो। किन्तु पुष्टिभक्तिको उद्देश (निरूपण मात्र) कियो ॥ ७ ॥

विवृतिः।

तत्र मर्यादिकी भक्तिः श्रीभागवतमार्गतः।
तदुक्तसाधनैरेव सिद्धा भवति सर्वथा ॥ ८ ॥

अन्वयार्थौ ।

तत्र–उनदोनोनमें, **मार्यादिकी भक्तिः**–मर्यादाभक्ति, **श्रीभागवतमार्गतः**–श्रीभागवतमें कही पद्धतिसूं, **तदुक्त साधनैः एव**–श्रीभागवतोक्त साधननके ही द्वारा, **सर्वथा**–अच्छीतरह, **सिद्धा भवति**–फल प्रद होय है।

भाषा-विवरण ।

अनुग्रहसूं जो भक्ति की प्राप्ति होय वह पुष्टिभक्ति। और जो साधन के द्वारा होय वह मर्यादाभक्ति। श्रीभागवतमें यद्यपि दोनो भक्तिनको निरूपण है तथापि अनुग्रहभक्ति साधन के द्वारा प्राप्य नहीं है, और मर्यादाभक्ति साधन के द्वारा सिद्ध होय है तासूं श्रीभागवत में वाके सर्व साधननको निरूपण है। जो कोई उन साधननको वाही पद्धतिसूं आचरण करे तो मर्यादाभक्तिको फल वाकूं मिलै है। मर्यादाभक्तिको फल है प्रभुस्नेह। प्रभुस्नेह की प्राप्ति भये पै भक्त कृतकृत्य होय जाय है॥ ८॥

विवृतिः।

पुष्टिस्त्वनुग्रहात्मा हि साधनैर्न भवेदिति॥
ज्ञापयित्वा भागवते दानाय जगतीतले॥ ९॥
भक्तिभावात्मकं स्वास्यं स्वयमाविश्चकार हि॥

अन्वयार्थौ ।

हि–इतनो विशेष है के, **अनुग्रहात्मा**–अनुग्रहस्वरूप, **पुष्टिः तु**–पुष्टिभक्ति तो, **साधनैः**–जीवकृत साधननसूं,

न भवेत्–नहीं होय, **इति**–ऐसें, **भागवते**–श्रीभागवतमें, **ज्ञापयित्वा**–जतायकें, **जगतीतले**–भूतलपै, **दानाय**–पुष्टिभक्तिको दान करवे के लिये, **स्वयं**–श्रीकृष्ण, **भक्तिभावात्मकं**–भक्तिभावरूप, **स्वास्यं**–अपने श्रीमुखकूं, **आविश्चकार**–प्रकटकरतभये, **हि** यह बात युक्त है ।

भाषा–विवरण ।

अनुग्रह भगवान् को धर्म है । अनुग्रह को ही नाम पुष्टि है । प्रभु जाके ऊपर अनुग्रह करें वाकूं अपने आप बिना साधनके प्रभु को स्नेह प्राप्त होय जाय हैं । ऐसे उदाहरण अनेक हैं । तासूं ऐसी भक्ति को नाम पुष्टिभक्ति है । जो उपाय जीवकृतिरूप हें उन्हें साधन कहें हैं । साधन के द्वारा जो भक्ति मिलें वाकूं पुष्टिभक्ति कहें हैं । अनुग्रह नित्य है और तासूं ही साधन साध्य नहीं है, भगवदिच्छाधीन है । जैसे चातुर्मास्यको समय रहते भी मेघ वर्षे ही गो यह निश्चय नहीं कर सकें हैं, ऐसें ही प्रभु को अनुग्रह कौन पै होयगो यह निश्चय नहिं । जीवको धर्म है साधनानुष्ठान, और प्रभुको धर्म है अनुग्रह करनो । कलियुगमें केवल वैदि साधननके द्वारा प्रभु को मिलनो दुर्लभ है । और अनवतार दशा होय वेसूं स्वरूप के द्वारा भी जनोद्धार नहीं होय सके है । यह सब बातें श्रीभागवत में स्पष्ट करी हैं । तासूं या समय में प्रभु ने अनुग्रहदान के सिवाय अन्य उपाय न देखके भक्तिभावात्मक अर्थात्

स्थायिभावस्वरूप अर्थात् आचार्यरूपेण स्वावतार, अपने मुखारविन्दकूं (श्रीमदाचार्यकूं) या भूतल पै अनुग्रहदान के लिये प्रकट कियो ॥ ९ ॥

विवृतिः ।

तत्सम्बन्धेन सर्वेषां मूर्तिमद्भक्तियोगतः ॥ १० ॥
भविता भावसम्बन्धस्ततः पुष्टिः फलिष्यति ॥

अन्वयार्थौ ।

सर्वेषां–सब दैवी जीवन को, **तत्संबंधेन**–(सुबोधिनीद्वारा) आचार्यन के सम्बन्धसूं, **मूर्तिमद्भक्तियोगतः** अर्थात् मूर्तिमतीभक्ति के साथ संबंध होयवेसूं, **भावसम्बन्धः**–तिरोहितस्थायिभावको सम्बन्ध, **भविता**–होयगो, **ततः**–और तदनन्तर, **पुष्टिः**–पुष्टिभक्ति, **फलिष्यति**–प्राप्त होयगी ।

भाषा–विवरण ।

आचार्यश्री साक्षाद्भक्तिको स्वरूप हैं उनके साथ सुबोधिनीद्वारा जो संबंध होय है वह मूर्तिमतीभक्तिसूं ही संबंध होय है। आचार्यनके संबंध में आयवेसूं और उनके उपदेश श्रवणसूं दैव जीवके हृदयमें स्थित स्थायिभाव उद्भूत होय है । यही भावको संबंध कहावे है । ये भाव जब सेवा कथा सत्संगादि द्वारा परिपुष्ट होय है तब पुष्टिभक्तिकी प्राप्ति होय है ।

विवृतिः ।

विना द्वारं हि जीवानां तत्सम्बन्धो हि दुर्लभः ॥११॥
स्वरूपाज्ञानतः पूर्वं तदर्थं भगवान्हरिः ।
मार्गं प्रकाशयन्नाविर्भूतः कालेपि तादृशे ॥ १२ ॥

अन्वयार्थौ ।

हि–ये बात युक्तभी है के, **द्वारं विना**–द्वारके विना, **जीवानां**–जीवनको, **तत्सम्बन्धः अपि**–भावके साथ संबंधभी, **दुर्लभः**–(अस्ति) दुर्लभ है । **पूर्वं**–आचार्यके मिले पहले, **स्वरूपाज्ञानतः**–प्रभुके–और मार्गके स्वरूपको अज्ञान है तासूं, **तदर्थं**–स्वरूपज्ञान करायवेके लिये, **भगवान्**–निरंकुशैश्वर्ययुक्त, **हरिः**–साक्षात् प्रभु, **तादृशे**–दोषयुक्त, **काले अपि**–कालमें भी, **मार्गं**–पुष्टिमार्गको, **प्रकाशयन्**–(सन्) प्रकाशकरते, **आविर्भूतः**–प्रकटभये ।

भाषा-विवरण ।

श्रीमद्भागवतमें प्रभुके शुद्धस्वरूपको निरूपण है, किन्तु अनेक विरुद्धशास्त्र और श्रीभागवत आदिपै अन्य टीकानके बन जायवेसूं प्रभुके स्वरूपज्ञानको तिरोधान होय गयो । स्वरूपज्ञान न होयवेसूं ही जीवनके हृदयमें भावोद्रेक नहि होय है । जाके द्वारा स्वरूपज्ञानको प्रचार होय ऐसे द्वार की अपेक्षा ही, तासूं प्रभुने अपने मुखारविन्दरूप श्रीवल्लभाचार्य श्रीकूं प्रकट किये । और उनकी सुबोधिनीके द्वारा अपनो

स्वरूपज्ञान करानो यह विचारकें ही साक्षात्प्रभु श्रावणैकादशीकी अर्द्धरात्रमें मार्गको उपदेश करते प्रकटभये । कलियुगको समय दोष वारो है यामें सब साधन निर्बल होय गये हैं तासूं आचार्यनकूं स्वोपदिष्टमार्ग में बलाधान करवे के लिये आप अपनो सामर्थ्य लेकें प्रकट भये, यह बात भगवान् शब्दसूं स्फुट होय है ॥ ११–१२ ॥

सिद्धान्तरहस्यम् ।

श्रावणस्यामले पक्ष एकादश्यां महानिशि ।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥ १ ॥

भावार्थ ।

श्रावण शुक्लैकादशीकी अर्द्धरात्रिमें जा मार्गको साक्षात् श्रीहरिने मोकूं उपदेश दियो वह में अक्षर अक्षर कहूं हूं ॥१॥

विवृतिः ।

फलमाचार्यसम्बन्धात्तत्सम्बन्धो हि मार्गतः ॥
अदेयदानदक्षश्चेत्यतो नाम विराजते ॥ १३ ॥

अन्वयार्थौ ।

आचार्यसम्बन्धात्–आचार्यके वचनसुधा सम्बन्धसूं, **फलं**–फलप्राप्ति होय है । **हि**–किन्तु **मार्गतः**–मार्गोपदेशकरवेसूं, **तत्सम्बन्धः (आचार्यसम्बन्धः)**– आचार्यको संबंध समझ्यौ जाय है । **अतः**–याहीसूं, **अदेयदानदक्षः**–अदेयदानदक्ष, **इति नाम**–यह आचार्यनको नाम, **विराजते**–शोभे है ।

भाषा-विवरण ।

'स गुरुमेवाभिगच्छेत्' इत्यादि श्रुतिनसूं यह विदित होय है के आचार्यको सम्बन्धभयेपैही फलकी प्राप्ति होय है। किन्तु वह सम्बन्ध अन्यप्रकारको नहि, केवल वचनको और मार्गोपदेशको ही सम्बन्ध समझनो । श्रीवल्लभाचार्यमें आचार्यत्व और भगवत्व दोनों हैं। भगवत्व होयवेसूं अदेय-दानसामर्थ्य है और आचार्यत्व होयवेसूं अन्यसंबन्धन को निरास है। सम्बन्ध अनेक प्रकार के हैं, यह बात 'कामाद्-गोप्यः' इत्यादिकी सुबोधिनीसूं स्पष्ट है। प्रभु निरंकुशैश्वर्य हैं तासूं सब सम्बन्धनसूं फलदान करसकें हैं। किन्तु श्रीमद्वल्लभाचार्य मे आचार्यत्वभी हैं तासूं अनिषिद्ध विहित मार्गोपदेश सम्बन्धसूं ही फलदान करें हैं ॥ १३ ॥

विवृतिः ।

मार्गेत्र प्रथमं पुष्टिः सम्बन्धवरणात्मिका ॥
मध्ये वेदोक्तमर्यादायुतभक्तिस्थितौ स्थितिः ॥१४॥
अपाषण्डित्वसिद्ध्यर्थं भगवत्तोषणाय च ॥
फलपुष्टेर्योग्यतायै..............................

अन्वयार्थौ ।

अत्र मार्गे-या मार्गमें, **प्रथमं**-पहलें; **सम्बन्धवर-णात्मिका**-सम्बन्धस्वीकाररूप, **पुष्टिः**-अनुग्रह (अस्ति) है। **मध्ये**-मध्यमें; **वेदोक्तमर्यादायुतभक्तिस्थितौ**-

वेदमें कहे मर्यादामार्गवारे भक्तिमार्गमें, **स्थितिः** (अस्ति) रहनो है। (तत्र हेतवः) (वामे हेतु दें हैं) **अपाषण्डित्वसिद्ध्यर्थं**–अपाषण्डिपनो सिद्ध होयवेके लिये, **भगवत्तोषणाय**–श्रीकृष्णके प्रसन्न होयवेके लिये, **च**–और, **फलपुष्टेः**–फलात्मक अनुग्रहकी, **योग्यतायै**–योग्यता होयवेके लिये।

भाषा-विवरण।

श्रीमद्वल्लभाचार्यप्रकटित पुष्टिमार्ग में आदि और अन्तमें अनुग्रह है, और मध्यमें वेदोक्तमर्यादावारे भक्तिमार्गीय धर्मनको अनुष्ठान है। ब्रह्मसम्बन्ध शब्दको जब बिना लक्षणाके अक्षरार्थ करें हैं तब यह मालुम पडे है के जीवको सम्बन्ध अक्षरब्रह्मके द्वारा श्रीकृष्णसूं होय है। कलिप्रसूत जीव प्रायः निःसाधन अथवा अन्यथा साधन हैं। और अक्षर ब्रह्म गणितानन्द है। और प्रथम सम्बन्ध तो वासु ही होय है। वस्तुतः संबंध होनो चाहिये श्रीकृष्णके साथ किन्तु जीव अन्यथासाधन किंवा निःसाधन है श्रीकृष्ण के साथ कैसें होय सके?। अक्षर ब्रह्म गणिता नन्द है तासूं वाके साथ संबंध भयो सो श्रीकृष्ण संबंध नहीं कहाय सके। ऐसी अवस्थामें प्रभुकें पुष्टिको उपयोग करनो पडे है अर्थात् ऐसी अवस्थामें श्रीकृष्ण वा जीवके स्वसम्बन्धकूं अनुग्रह करके ही स्वीकार करें हैं। निःसाधन और अन्यथा

साधन जीव पै अनुग्रह करवे सूं ही प्रभुको प्रभुत्व है यह दशमसुबोधिन्यादिसूं सिद्ध है। तासूं या मार्गमें यह आदि पुष्टि कही जाय है। और प्रभु निःसाधन अन्यथा साधन जीव कूं फलदान देवमें समर्थ हैं, जो साधनकी तरह मर्यादास्थिति प्रभृति उपाय किये जाय हैं उनसूं फलप्राप्ति नहीं होय है किन्तु फलप्राप्ति तो मोसूं ही होय है यह बात स्पष्ट करवेके लिये ही प्रभु फिर फलात्मक अनुग्रहको दान करें हैं। याकूं ही अन्तिमपुष्टि कहें हैं। निःसाधन अथवा अन्यथा साधन जीवके अक्षरद्वारा किये गये सम्बन्धकूं स्वीकार करनो यह प्रथमपुष्टि कही जाय है, और फिर वैसे जीवकूं साधन निरपेक्ष फलदान करनो यह अन्तिम पुष्टि कहावे है। और मध्यमें यथाधिकार वर्णाश्रमादि धर्मानुष्ठान सहित भक्तिमार्गीय (श्रवणकीर्तनादि) उपायानुष्ठान करनो यह या श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकटित पुष्टिमार्गको स्वरूप है।

यहां इतनो प्रश्न होय है के जब सम्बन्धको स्वीकार भी प्रभु अनुग्रहसूं ही करें हैं और फलको दान भी अनुग्रहसूं ही करें हैं तब फिर मध्यमें वेदोक्त मर्यादा (वर्णाश्रमादिधर्म) युक्त भक्तिमार्गीय उपायानुष्ठान करनो क्यों?

श्रीहरिरायजी या प्रश्नके उत्तरमें तीन प्रयोजन दें हैं— वेदोक्तमर्यादा और भक्तिमार्गीय मर्यादाको पालन न करवे सूं जीवमें पाषण्डिपनो आजाय हैं सो पाषण्डिपनो न आजाय

याके लिये वेदोक्तमर्यादा युक्त भक्तिमर्यादा में रहनो चहिये। कदाचित् वैसी संपत्ति (आसुरी) न रहवेसूं किंवा वैराग्य और दीनता होय तथा सत्संगादिसूं अन्तःकरण शुद्ध भी रहतो होय तथापि वाकूं भी प्रभुकूं सन्तोष होय वे के लिये और प्रभुकूं फलरूपा पुष्टिको दान करवेकी अपनी योग्यता सिद्ध करदेवेके लिये वेदोक्त मर्यादा सहित भक्तिमर्यादामें रहनो ही उचित है। स्त्री यद्यपि पतिपरायणा, दीन, एवं अन्यत्र वैराग्यवती होय तथापि यदि श्वश्रूश्वशुरादिकी उचित शुश्रूषा न करती होय, पतिके मान्य स्नेही प्रभृतिनको उचित सत्कार न करती होय, और गृहकार्य भी न करती होय तो पतिकूं सन्तोष नहीं होय और जो पतिको संतोष प्राप्त न करती होय वा स्त्रीकूं पतिके अपरिमेय स्नेहके प्राप्त करवेकी योग्यता नहीं है। ऐसे ही अक्षरद्वारा प्रभुसंबंध भयेपै भी वैराग्यादिगुण रहते भी और अन्तःकरण वशमें रहते भी यदि पुष्टिमार्गीय जीव वेदोक्तमर्यादा सहित भक्तिमर्यादामें न रहै तो प्रभुकी आज्ञाको भङ्ग करवेसूं प्रभुकूं संतोष नहिं होय, और जब प्रभुकूं सन्तोष न होय वहांतक वाजीवमें फलरूपा पुष्टिके दान करवेकी योग्यता नहीं आवे है।

तासूं ब्रह्मसंबंध भये पीछे पुष्टिमार्गीय वैष्णवकूं पाषंडिपनो न आयवेके लिये प्रभु के सन्तोष होयवेके लिये और फल पुष्टिके प्राप्त करवेकी योग्यता होयवेके लिये मध्यमें

वेदोक्तमर्यादा युक्त भक्तिमार्गीय उपायनको स्वीकार करनो ही चाहिये ॥ १४ ॥

विवृतिः ।

...............फलं कृष्णेन नान्यथा ॥ १५ ॥
निःसाधनत्वभङ्गः स्याद्यदि स्यात्साधनैः फलम् ॥
एतादृङ्मार्गबोधाय प्राकट्ये तादृशो मतः ॥१६॥
कालो हरेः कृपापूर्णनिःसाधनफलात्मनः ॥
श्रावणः पुष्टिमार्गीयश्चातुर्मास्यगतत्वतः ॥ १७ ॥
विष्णुसम्बन्धिसम्बन्धात्संबन्ध[१] व्यापको मतः ॥
बोध्यते तेन पुष्टिर्हि प्रथमं[२] वरणात्मिका ॥ १८ ॥

अन्वयार्थौ ।

फलं–फलप्राप्ति, **कृष्णेन**–श्रीकृष्णसूं होय है । **अन्यथा**–औरप्रकारसूं, **न**-नहीं होय है । **यदि**–जो, **साधनैः**–साधननसूं, **फलं**, फल, **स्यात्**–होय, (तर्हि) (तो) **निःसाधनत्वभङ्गः**–श्रीकृष्णके निःसाधनफलात्मकपनेको भङ्ग, **स्यात्**–होय जाय । अथवापुष्टिकी निःसाधनफलरूपताको भङ्ग हो जाय । **एतादृङ्मार्गबोधाय**–उभयात्मकही (पुष्टिमर्यादारूपही) यह मार्ग है, यह स्पष्ट करवेके लिये, **प्राकट्ये**-प्रकट होयवे में, **कृपापूर्णनिःसाधनफलात्मनः**-

१–अक्षरसंबंधबोधको हेतुः ।

२–अक्षरसंबंधसाधको हेतुः ।

कृपासूं पूर्ण और साधननसूं अप्राप्य फलरूप, **हरेः**–श्रीकृष्णको, **पुष्टिमार्गीयः**–अनुग्रहमार्गीय, (किञ्च) (और) **चातुर्मास्यगतत्त्वतः**–चातुर्मासमें आयवेसूं, **विष्णुसम्मन्धिसम्बन्धात्**–विष्णुके (अक्षरके)संबधिसूं सम्बन्ध होयवेसूं, **संबंधव्यापकः** संबंधकूं स्पष्ट करवेवारो, **तादृशः** उभयात्मकसंबंधराखवेवारो, **कालः**–समय, **मतः**–स्वीकार कियो है । **तेन**–अक्षरद्वारा संबंध होयवेसूं, **प्रथमं**–पहलें, **वरणात्मिका**–संबंधस्वीकाररूप, **पुष्टिः**–अनुग्रह, **बोध्यते**–स्पष्ट कियो है, **हि**–और यह बात युक्त है ।

भाषा–विवरण ।

पूर्वश्लोकनमें वेदोक्तमर्यादायुक्तभक्तिमार्गीय उपायनपे बहुत जोर देवेसूं यह प्रश्न होय है के जब उपायपरिग्रह पै विशेष भार है तो फिर साधनसूं ही फलप्राप्ति होय है ऐसो मानवे में कहा बाध है ?

या प्रश्नके उत्तरमें श्रीहरिरायजी आज्ञा करेंहैं के फल तो श्रीकृष्णसुं ही प्राप्त होय है । 'फलमत एवोपपत्तेः' इत्यादिन्यायसुं यह स्पष्ट है के फल देवे में भगवान् ही स्वतन्त्र हैं । साधनादिक, स्वरूपतः परतन्त्र होयवेसूं फल देवे में परतन्त्र हैं । याही बातकूं स्पष्ट करवे के लिये कहें है के यदि साधननसूं फल प्राप्ति होजाय तो फिर प्रभु की निःसाधनफलरूपताको तथा पुष्टिके निःसाधनत्वको भङ्ग होजाय ।

प्रभु स्वयं फलरूप हैं, स्वतन्त्र हैं, और नित्य हैं तासूं साधनसूं प्राप्य नहीं हैं । जो साधन साध्य होय सो स्वतन्त्र और नित्य नहीं । अनुग्रहभी भगवद्धर्म होयवेसूं साधन-साध्य नहीं है । अनुग्रह भगवदिच्छाधीन है । प्रभु और अनुग्रह दोनो धर्मिधर्म होयवेसूं अभिन्न हैं । प्रभु फल हैं और फलप्राप्तिको कारण अथवा साधन अनुग्रह है । स्वीकार को ही तात्पर्यान्तरित नाम अनुग्रह है । 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः' । जीवकृति साध्य जितने साधन हैं वे सब प्रभु प्राप्तिके कारण नहीं होय सकें हैं । यदि ऐसें होय तो फलकूं अनित्यता आजाय । तासूं साधनसूं फल नहीं होय, अनुग्रहसूं ही फलप्राप्ति होय है । पुष्टिमार्ग में प्रभुही साधन और फल हैं यह हम याविवृतिकी तृतीय कारिकामें कह आये हैं । रसरूपसूं फल हैं और अवताररूप सूं साधन हैं कारण हैं । अनवतार दशामें अनुग्रह रूपसूं साधन किंवा कारण हैं । प्रभु किंवा अनुग्रह के सिवाय जहां जीवकृति-साध्य साधन, साधन न होंय वाको ही नाम निःसाधन पनो है । प्रभु, किंवा अनुग्रह दोनो जीवकृतिसाधनसाध्य नहीं हैं और ताही सूं निःसाधन फलरूप कहे जांय हैं । और याहीसूं यह मार्गभी निःसाधन मार्ग कह्यो जाय है । या मार्गमें कोई साधन ही नहीं है तासूं नहिं, किन्तु जीवकृति साध्य साधन नहीं हैं तासूं निःसाधन कह्यो जाय

है । श्रवणादिभक्ति सहित सर्व वेदोक्त साधन, जीवकृति साध्य हैं तासूं भगवत्प्राप्तिके कारण नहीं हैं किन्तु व्यापार हैं । और याही सूं श्रीगीता में **'नाहं वेदैर्न तपसा'** आदि श्लोकसूं सर्व साधननकी अकारणता कही है । स्नेह भगवद्धर्म है तासूं वहां गीतामें भक्तिकूं स्वप्राप्तिमें कारण कही है । तासूं यह स्पष्ट है कि फल प्राप्ति साधन सूं नहिं किन्तु श्रीकृष्णसूं ही फल मिलै है ।

यहां यह प्रश्न होय है के जब अनुग्रहसूं और क्वचित् श्रीकृष्णसूं ही फल प्राप्ति हो जाय है तो फिर वेदोक्त-मर्यादायुक्त भक्ति मार्गीय साधननको अनुष्ठान निरर्थकहै ?

ताको उत्तर प्रथम **'अपाषण्डित्व'** या कारिका सूं दे आये हैं । किन्तु इतनो और विशेषमें समझ राखनो चहिये कि भक्ति आदिकूं व्यापाररूपता है तासूं अवश्य करनो ही चहिये । अनुग्रह साधन है प्रभु फल हैं और मर्यादा और भक्तिमार्गीय उपाय व्यापार हैं । बे जीवके धर्म होयवे सूं अवश्य कर्तव्य हैं । जैसे ब्राह्मणने निष्कारण षडङ्ग वेद अध्येय है ऐसें जीवने भी अधिकारानुसार स्वधर्म अवश्य कर्तव्य हैं ।

'नामादीनां व्यापारत्वमेव' या श्रीमदाचार्यके वाक्यसूं यह सिद्ध है । घटोत्पत्तिमें दण्डचक्र आदिकूं ही कारणता है । और हस्त आदिकी चेष्टा व्यापारही है कारण

नहीं । तथापि चेष्टा अवश्य कर्तव्य है । चेष्टा विना कार्य नहीं चल सके है, ऐसेही फलप्राप्तिमें अनुग्रहही कारण है तथापि वेदोक्तमर्यादा युक्त भक्तिमार्गीय उपाय व्यापार होयवेसूं अवश्य कर्तव्य हैं । और अत एव श्रीहरिरायजीने उन्हें मध्य कर्तव्य कहे हैं ।

यह श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकटितमार्ग आद्यन्तमें पुष्टि, और मध्यमें वेदोक्तमर्यादा युक्त भक्तिमार्गीय उपाय वारो हैं यह दिखायवेके लिये ही प्रभुने प्रकट होयवेमें उभयात्मक कालको ग्रहण कियो । सौरमासके अनुसार श्रावण महीना कृपापूर्ण और निःसाधनफलरूप श्रीकृष्ण के प्रकट होयवेको महिना होयवेसूं पुष्टिमार्गीय है । किन्तु विष्णुदैवत्य (अक्षरब्रह्म)चातुर्मास्यके मध्यगत होयवेसूं या महीनाको विष्णुदैवत्य चातुर्मास्यके साथभी संबंध है ऐसो सिद्ध होय है और ताहीसूं अक्षरके साथ भी याको संबंध है यह स्पष्ट माननो चहिये । अक्षरके साथ संबंध होयवेसूं श्रावणमें कुछ अन्यथा साधनताभी आई । ये अन्यथा साधनता रहते भी जो प्रभुने संबंध को स्वीकार कियो यह वरणात्मिका प्रथमा पुष्टि है ॥ ८ ॥

और यदि तिथि तथा तात्कालिक कालके आडी निगाह दे हैं तो भी प्राकट्यमें उभयात्मक पुष्टिमर्यादारूप कालही आवे है यह दिखावें हैं—

विवृतिः।

मर्यादाबोधनार्थाय पक्षः प्रोक्तोऽमलस्तथा ॥
भक्तिमार्गीयमर्यादाबोधिकैकादशी मता ॥ १९ ॥
प्राकट्यकालः पूर्णस्य हरेः प्रोक्ता महानिशा ॥
निःसाधनजनोद्धृत्यै फलदानाय भूतले ॥ २० ॥
फलसामयिकी पुष्टिस्तेनाऽत्र विनिरूपिता ॥

अन्वयार्थौ।

मर्यादाबोधनार्थाय–वेदोक्तमर्यादा दिखायवेके लिये, **अमलः**–दोषरहित अर्थात् शुक्ल, **पक्षः**–पक्ष, **प्रोक्तः**–कह्यो है। **तथा**–तेसेंही, **भक्तिमार्गीयमर्यादाबोधिका**–भक्तिमार्गीयमर्यादाकूं स्पष्ट कहवे वारी, **एकादशी**–एकादशी, **मता**–मानी है। **भूतले**–या पृथ्वीपै, **निःसाधनजनोद्धृत्यै**–निःसाधनजननका उद्धार करवेकूं, **फलदानाय**–फलदेयवेके लिये, (प्रकटस्य) (प्रकटभये) **पूर्णस्य**–समग्रैश्वर्यादि युक्त, **हरेः**–श्रीकृष्णको, **प्राकट्यकालः**–प्रकट होयवेको समय, **महानिशा**–अर्धरात्रि, (अत्र) **प्रोक्ता**–यहां कही है। **तेन**–तासूं, **अत्र**–यहां, **फलसामयिकी**–फलसमयको, **पुष्टिः**–अनुग्रह, **विनिरूपिता**–कह्यो है ॥

साधनशुद्ध होयवेसूं शुक्लपक्ष वेदोक्तमर्यादा को बोधक है। और एकादशेन्द्रियनको दोष निवर्तन करवेवारी एका-

दशीभी भक्तिमार्गीय मर्यादाकूं स्पष्ट करवेवारी है। ऐसें शुक्लपक्ष (वेदोक्त मर्यादा) और एकादशी (भक्ति-मर्यादा) दोनो प्रकारको समय ग्रहण करवेसूं या मार्गमें मर्यादा और पुष्टि दोनोनको संग्रह है यह सिद्ध होय है। किन्तु निःसाधन गोपीजनादिके उद्धारार्थ फलदान करवे के लिये भूतल पै प्रकट भये पूर्ण परब्रह्म श्रीकृष्णको प्रकट होयवे को जो अर्धरात्रि समय है वो ही अर्धरात्रि श्रीवल्लभाचार्यश्री के समय में भी प्रभु ने प्रकट होयवे में ग्रहण करी है तासूं स्पष्ट होय है के फल समयको द्वितीय अनुग्रहभी प्रभुने स्वीकार कियो है । और तासूं ही प्रथम अक्षरद्वारा सम्बन्ध ग्रहणकर प्रथमपुष्टि दानकरेंगे और तद नन्तर द्वितीय फलात्मक पुष्टिकोभी दान करेंगे ।

शुक्लपक्ष एकादशी अर्धरात्रि को ही प्राकट्य में स्वीकार करवेसूं प्रभुकूं भी मर्यादा और पुष्टि दोनो श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकटित मार्ग में स्वीकृत हैं यह स्पष्ट होय है ॥

विवृतिः ।

एवंविधे हरिः काले प्रादुर्भूय निजेच्छया ॥२१॥
ब्रह्मसंबंधमारभ्य सर्वं मार्गं स्वयं जगौ ॥

अन्वयार्थौ ।

एवंविधे—याप्रकारके, **काले**—समयमें, **हरिः**—श्रीकृष्णने, **निजेच्छया**—अपनी इच्छासूं, **प्रादुर्भूय**—प्रकट होयकें,

ब्रह्मसंबंधं—ब्रह्मसंबंधसूं प्रारम्भ करके, **सर्वं**—सब, **मार्गं**—मार्गको, **स्वयं**—अपने मुखसूं **जगौ**—निरूपण कियो ।

भाषा-विवरण ।

वेदोक्तमर्यादा युक्त भक्तिमार्गमर्यादा, और पुष्टि, दोनोनको सूचन करवे वारे कालमें अपनी इच्छासूं ही प्रकट होय कें प्रभुने श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीकूं निवेदनरीतिसूं प्रारम्भ करके सर्वमार्ग को सिद्धान्त कह्यो ।

विवृतिः ।

न भक्तैर्नावतारेण न स्वप्नप्रेरकेण च ॥ २२ ॥
न पूर्वरसरूपेण मूलरूपेण वै हरिः ॥
उक्तवानिति बोधाय साक्षात्पदमिहोदितम् ॥२३॥

अन्वयार्थौ ।

भक्तैर्न—भक्तनके द्वारा नहीं, **अवतारेण न**—अवतारके द्वारा नहीं, **स्वप्नप्रेरकेण न**—स्वप्नप्रेरक अन्तर्यामीके द्वारा नहीं, **च** और, **पूर्वरसरूपेण न**—संयोग—रसरूपसूं भी नहीं, **वै**—किन्तु, **हरिः**—श्रीकृष्णने, (यह मार्ग) **मूलरूपेण**—मूलरूपसूं, **उक्तवान्**—कह्यो है, **इति**—यह, **बोधाय**—स्पष्टकरवे के लिये ही, **इह**—मूलमें, **'साक्षात्' पदं**—'साक्षात्' पद, **उदितम्**—कह्यो है ।

कभी कभी प्रभु नारदाम्बरीषादि भक्तनके द्वारा, कभी नृसिंह वामनादि अवतारनके द्वारा, और कभी अन्तर्यामीके

द्वारा उपदेश करे हैं किन्तु श्रीमद्वल्लभाचार्यकूं तो पूर्वरस-रूपकूं भी छोडकें खास विप्रयोगात्मक रसरूपसूं अर्थात् पूर्णरूपसूं उपदेश दीनो यह स्पष्ट करवेके लिये ही सिद्धान्त-रहस्यकी कारिकामें **साक्षात्** पद धर्यो है ॥ २३ ॥

विवृतिः ।

सर्वलीलाविशिष्टत्वबोधाय भगवत्पदम् ॥
साभिप्रायत्वबोधाय कथने प्रपदं मतम् ॥ २४ ॥

अन्वयार्थौ ।

सर्वलीलाविशिष्टत्वबोधाय–सर्वलीला सहित प्रभु प्रकट भये हैं यह जनायवेके लिये, **'भगवत्पदं'** (उक्तम्) 'भगवत्' पद कह्यो है । (किंच) (और) **साभिप्रायत्वबोधाय**–अपने निज आशय सहित सिद्धान्तको उप-देश दियो है यह दिखायवेके लिये ही **कथने 'प्रोक्तं'** या शब्दमें, अथवा कथनमें **प्रपदं मतं**–प्र उपसर्ग लगायो है ।

भाषा–विवरण ।

सिद्धान्तरहस्यकी मूलकारिकामें कृष्णपद न कहकें जो भगवत्पद कह्यो ताको इतनो ही तात्पर्य है के कृष्णपद केवल धर्मि बोधक है और भगवान् यह पद सर्वधर्म सर्व लीलाविशिष्ट धर्मिकूं कहवे वारो है तासूं ही मूलमें **'भगवता'** पदको प्रयोग कियो है । और 'उक्तं' इतनो मात्र कहवे सूं कार्य चलतो तथापि जो 'प्रोक्तं' कहकें प्र उपसर्ग

विशेषमें लगायो ताको तात्पर्य यह है जो प्रभुने वेद श्रीभागवत आदि शास्त्रनको गूढ रहस्यको तो उपदेश कियो ही किन्तु वाके साथ अपनो निज आशय भी प्रकट कियो। कथनमें यह ही प्रकर्ष है ॥ २४ ॥

विवृतिः।

यदुक्तं हरिणा तद्धि प्रत्यक्षरमिहोच्यते ॥
ब्रह्मसंबंधकरणादित्यादि भगवद्वचः ॥ २५ ॥

अन्वयार्थौ।

यत्–जो, **हरिणा**–श्रीकृष्णने, **उक्तं**–कह्यो, **तत् हि**–वोही, **प्रत्यक्षरं**–अक्षरके अक्षर, **इह**–यहां, या ग्रन्थमें **उच्यते**–कहे जांय हैं। **'ब्रह्मसम्बन्धकरणात्' इत्यादि**–सिद्धान्तरहस्यके दूसरे श्लोकसूं लेकें सबके सब, **भगवद्वचः**–श्रीकृष्णके ही वचन हैं।

भाषा-विवरण।

सिद्धान्तरहस्यमें 'साक्षात्प्रभुने जो कह्यो सो में प्रत्यक्षर यहां कह दौं हूं' यह जो श्रीआचार्यनने आज्ञा करी है तासूं विदित होय है के 'ब्रह्मसंबंधकरणात्' इत्यादि सब मूलके श्लोक भगवान्के ही वचन हैं ॥ २५ ॥

सिद्धान्तरहस्यम्।

ब्रह्मसंबंधकरणात्सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि..............................

मूलार्थ ।

ब्रह्मके साथ संबंध करवेसूं सबके देह और जीवनके सब दोषन की निवृत्ति होय है ॥

विवृतिः ।

आदौ सम्बन्धकरणं कन्ययेव स्वयंवरे ॥
स्वस्य सर्वपदार्थानां मनसा तेन योजनम् ॥ २६ ॥

अन्वयार्थौ ।

आदौ–प्रथम, **सम्बन्धकरणं**–नाम, सम्बन्धको करनो-यह कहावे है जो, **स्वयंवरे**–स्वयंवरमें, **कन्यया इव**–कन्याकी तरह, **मनसा**–सह मनसहित, और मनके द्वारा **स्वस्य**–अपने, सर्वपदार्थानां, **तेन**–सह भगवान्‌के साथ, **योजनम्**-लगाय देनो ।

[1]भाषा-विवरण ।

दो प्रकारको संबंध है, एक साधनरूप, दूसरो फलरूप। तामें साधनरूप संबंध प्रथम है । सम्बन्ध अनेक प्रकार के होय हैं उनमें यहां स्वस्वामिभावसम्बन्ध समझनो । जीव प्रभुको स्व है और प्रभु जीवके स्वामी हैं । देहसहित आत्मा, और देह–जीवसूं सम्बन्ध राखवे वारे अन्य सब आत्मीयपदार्थनकूं मनसहित मनके द्वारा श्रीकृष्णमें ही लगाय देनो यह ब्रह्मसम्बन्ध कहावे है । यह सम्बन्ध साधनरूप है तासूं अक्षरब्रह्मके साथ होय है । और याहीसूं ब्रह्मसम्बन्ध कह्यो

१–श्रीहरिरायजी ने यह पद बहुत ही गूढ आशय सूं राख्यो है ।

जाय है। किन्तु साधनफलको ऐक्य है, ब्रह्म और श्रीकृष्णके आपसमें तादात्म्य सम्बन्धभी है तासूं या समय श्रीकृष्णभी ब्रह्मके द्वारा साधन भये हैं। याहीसूं यह संबंध ब्रह्मके द्वारा श्रीकृष्णके साथ है ऐसो समझनो। 'कृतस्य करणं नास्ति' 'जो प्रथमसूंही है वाको करनो नहीं बनसके है' यह प्रश्न यहां करनो ठीक नहीं, क्यों कि यहांतो केवल विस्मृत बातको स्मरण और तदनुसार अनुष्ठानको प्रारम्भ ही होय है, किन्तु अनादिकालसूं अविद्या परवश जीवकूं यह सब नवीन जैसो मालुम पडै है। हां यहां इतनो प्रश्न होय सके है के जब वेदशास्त्रादि पढेगो तब प्रभुको और अपनो स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है यह अपने आप खबर पड जायगी और तदनुसार कैसो अनुष्ठान करनो यहभी मालुम होय जायगी फिर गुरुकी कहा अपेक्षा है? । ताको इतनो ही उत्तर हे के 'स गुरुमेवाभिगच्छेत्' या श्रुतिमें गुरूपसत्तिकी आज्ञा है तासूं गुरुके द्वारा ही संबंध ग्रहण करनो यह ठीक है। लोक युक्ति याहीके आगेकी कारिकामें श्री हरिरायचरण स्वयं कहेंगे। अस्तु—

कन्याके मन आदि समस्तपदार्थनको पति के साथ संबंध होयवे को प्रथम दिन स्वयंवर है। स्वयंवर के पहलें कन्या अपने मन आदि वस्तुन की आप मालिक हती, किन्तु स्वयंवरके दिनसूं वाके सब पदार्थनको और वाको

मालिक स्वामी है। किन्तु इतनो भेद है कि, विवाह किंवा वयंवर के दिनसूं अंगसंग भये पहलें जो वाके मन आदि पदार्थन को संबंध होय है वह सब मानसिक और स्वामी के मानसिक रूपान्तर के साथ होय है तासूं ही वह साधनरूप है। और जब द्विरागमन आदिके पीछे घर गये पै अंगसंग रूप फलप्रारम्भसूं लेके आजन्मपर्यन्त जो सम्बन्ध होय है वह साक्षात् और साक्षात्स्वरूपके साथ होय है तासूं फलात्मक कह्यो जाय है। ऐसें ही यहां भी आत्मा और आत्मीय पदार्थन को प्रारम्भ में जो प्रभुके साथ संबंध होय है वह मानसिक और अक्षर ब्रह्म रूपान्तर के साथ होय है तासूं यह साधनात्मक कहावे है। और फलप्राप्ति भयेपै जो मूलरूपसूं आत्मा आत्मीयन को संबंध होयगो वह फलात्मक होयगो। यह सब बातें ३६ की कारकासूं स्वयं श्रीहरिरायचरण कहेंगे ॥ २६ ॥

विवृतिः ।

सम्बन्धवत्या दूत्येव गुरुणा तत्कृतिर्भवेत्॥
सम्बन्धश्चापि निर्दोषस्तथा सर्वसमः स्मृतः ॥ २७ ॥

अन्वयार्थौ ।

सम्बन्धवत्या–सम्बन्धवारी, **दूत्या इव**–दूतीकी तरह, **गुरुणा**–गुरुके–द्वारा, **तत्कृतिः**–दूतीको काम, **भवेत्**–होय है । **च**–और, **सम्बन्धः अपि**–सम्बन्धभी,

निर्दोषः–निर्दोष, **तथा**–और, **सर्वसमः**–सबको इकसार, **स्मृतः**–स्मृतिनमें कह्यो है ।

भाषा–विवरण ।

साधन अवस्थामें ही दूती की अपेक्षा है फलावस्थामें नहि, ऐसें ही साधन अवस्थामें ही गुरुकी अपेक्षा है फलमें नहिं । दूती जैसे दोनोन के परिचय वारी होय और निसृष्टार्थ होय तो ही कार्यसिद्धि होय ऐसें ही गुरुभी शब्द और परमें निष्णात होय तो ही फलप्राप्ति वारो सम्बन्ध कराय सके है । दूती यदि अज्ञ होय तो जैसे संबंध ही न होय और होय तो भङ्ग हो जाय ऐसें गुरुभी शाब्दपर-निष्णात न होय तो संबंध ही न होय और होय तो भङ्ग हो जाय । तासूं हीं शास्त्रनमें गुरू की परीक्षा लिखी है । जैसे द्विरागमनादिके पूर्व वर वधूको सम्बन्ध मानसिक होय व सूं निर्दोष और सम होय है तैसें ही जीव और ब्रह्मको संबंध मानसिक होयवेसूं निर्दोष और सम होय है ॥ २७ ॥

विवृतिः ।

वह्नेरिवेति बोधाय प्रोक्तं ब्रह्मपदं पुनः ॥
'निर्दोषं हि समं ब्रह्मे'त्यत्रोक्तं तत्तथाविधम् ॥ २८ ॥

अन्वयार्थौ ।

पुनः–और, **वन्हेः इव**–अग्निकी तरह, **इति बोधाय**–यह दिखायवे के लिये, **ब्रह्मपदं**–ब्रह्मशब्द[1], **प्रोक्तं**–कह्यो

१–अक्षरबोधकःशब्दः ।

है । '**निर्दोषं हि समं ब्रह्म**–ब्रह्म निर्दोष है और सम है,' **इत्यत्र**–या गीताके श्लोक में, **तत्**–वह (अक्षरब्रह्म), **तथाविधं**–निर्दोष सम, या प्रकारको, **उक्तं**–कह्यो है ।

भाषा–विवरण ।

अग्नि जैसे सब के प्रति समान है एवं स्वयं दोष रहित रहकें और अन्य के दोष की निवृत्ति करवे वारो है तैसे ही यह सम्बन्धभी सब कूं समान होय है और दोष की निवृत्ति के लिये ही है यह स्पष्ट करवे के लिये ही अक्षर ब्रह्मबोधक ब्रह्मपद को उपयोग कियो है । श्री गीता के 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म' या श्लोक में अक्षर ब्रह्म की निर्दोषता और सर्वसमता कही है ॥ २८ ॥

विवृतिः ।

स्यात्प्रयुक्ते कृष्णपदे विषमत्वं गुणाहितिः ॥
सम्बन्धे तादृशापेक्षा नास्ति दोषनिवारणात् ॥२९॥

अन्वयार्थौ ।

कृष्णपदे–श्री कृष्ण शब्द को, **प्रयुक्ते**–जो प्रयोग करते, (तर्हि) (तो), **गुणाहितिः**–गुणनको निवेश, **विषमत्वं**–विरुद्ध, **स्यात्**–होय जातो । **दोषमात्र निवारणात्**–दोषन की निवृत्तिमात्र अपेक्षित होयवेसूं, **सम्बन्धे**–प्रारम्भिक सम्बन्ध में, **तादृशापेक्षा**–गुण सहित (कृष्ण) पदार्थ की अपेक्षा, **न अस्ति**–नहीं है ।

भाषा-विवरण।

यहां यदि कोई कूं ऐसो प्रश्न होय के ब्रह्मसम्बन्ध की जगह कृष्ण सम्बन्ध शब्द को प्रयोग क्यो न कियो ? और अक्षर ब्रह्म के ठिकाने श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध होयवे में कहा दोष है ? तो वाको ये ही उत्तर है के जो ब्रह्मसंबंध शब्द में कृष्ण शब्द को प्रयोग करते, अर्थात् ब्रह्मसंबंध की जगह कृष्णसंबंध शब्द कहते तो गुणाधान निरर्थक और प्रयोजन के विरुद्ध हो जातो। तात्पर्य यह है के-'ब्रह्म' शब्द भगवान् के तिरोहितसर्वधर्मक रूपान्तर को बोधक है। श्रीपुरुषोत्तम के अनन्त रूप हैं। उन में एक ऐसो भी स्वरूप है जोमें सब धर्म, सब गुण, और सब शक्तिन-को तिरोधान है, वाही स्वरूप कूं अक्षर ब्रह्म वा ब्रह्म कहें है। और श्रीकृष्ण भी श्रीपुरुषोत्तम को ही स्वरूप है किन्तु वामें सर्वधर्म, सर्वशक्ति, और सर्वगुण प्रकट हैं। ब्रह्मतिरोहित सर्वगुण है तासूं सर्वके प्रति समान है। और ब्रह्म अग्नि की तरह शोधक भी है। वन्हि जैसे स्वरूपतः सर्वशोधक और सर्वसम है तैसो ही ब्रह्म भी सर्वसम और सर्वदोष निवर्तक है। सब की समान रीति सूं जा समय दोष निवृत्ति की अपेक्षा होय है ता समय जैसे अग्नि को उपयोग और सम्बन्ध करानो उचित है, ऐसे हीं जब सर्व-सम प्रकार सूं दोष निवृत्ति की इच्छा भई तब ब्रह्म के

साथ सम्बन्ध करानो ही उचित है, कृष्ण के संग संबंध करनो उचित नहीं। श्रीकृष्ण विषम हैं, सब के प्रति समान नहीं। क्यों के रसस्वरूप हैं। रस को स्वभाव ही विषम है। अन्यथा-रस के नौ और दशभेद न होते। श्रीकृष्ण रस रूप हैं यह सर्वशास्त्र कह रहे हैं। रसमात्र विषम हैं यह भी शास्त्र संमत है। श्रीकृष्ण की विषमता तो 'मल्लानामशनिः' श्लोक सूं सर्व प्रसिद्ध है। यदि श्रीकृष्ण विषम न होते तो गुणाहिति गुणाधान (श्रीकृष्ण में दिव्यगुणन को निवेश) ही व्यर्थ हो जातो। कोई एक गुण सब के प्रति सम नहीं हो सके है। जब श्रीकृष्ण में सर्व गुण प्रकट हैं तो यह भी अवश्य है कि वे विषम हैं। तासूं जहां दोषमात्र की निवृत्ति करनो अभीष्ट है और गुणाधान की अपेक्षा है नहीं, ऐसे ठिकाने तो सर्वसम और निर्दोष अक्षर ब्रह्म को ही सम्बन्ध करनो वा करानो ठीक है।

यहां इतनो प्रश्न हा सक है के श्रीकृष्णभी निर्दोष हैं तासूं दोषकी निवृत्ति उनके संबंध सूं भी होय सके है तो फिर कृष्ण शब्दको प्रयोग क्यों न कियो ?

ताको उत्तर इतनो ही है के यद्यपि श्रीकृष्ण निर्दोष हैं तथापि वे गुणाधायकभी हैं। किन्तु जहांतक दोष निवृत्ति न होय तहांतक गुणाधान् होय नहीं सके। शुद्धपटपै ही रंग दियो जानो उचित्त है। यदि पट मैलो होय तो प्रथम वाको मैल काटनो ही उचित है। जब वाको मैल दूर हो

जाय तब ही वामें रंगको आधान करनो उचित है। ऐसें ही अक्षर ब्रह्मसंबंधके द्वारा प्रथम दोष निवृत्ति हो जाय ता पीछे श्रीकृष्णके संग संबंध होनो उचित है। और वा समय ही निर्दोष जीवमें भगवद्‌गुणनको आवेश सुन्दर रीतिसूं होयगो। श्रीकृष्ण फलस्वरूप और गुणाधायक हैं तासूं श्रीकृष्णको सम्बन्ध फलसमयमें कहेंगे। दोष निवारण समयमें दिव्य-गुणयुक्त श्रीकृष्णके सम्बन्धकी अपेक्षा नहीं है, प्रत्युत वाके विरुद्ध है। गुरुके द्वारा पहलो जो निर्दोष और सम ब्रह्मके साथ सम्बन्ध है वह दोषनिवृत्तिमात्रके लिये है। भगवदानंद और तद्‌गुणन को आवेश करवे वारो श्रीकृष्णको संबंध तो फलके समय मान्यो है ॥ २९ ॥

विवृतिः ।

दोषमात्रनिवृत्त्यर्थं ब्रह्मसंबंध उच्यते ॥
गुणाधायकसम्बन्धः फलसामयिको मतः ॥ ३० ॥

अन्वयार्थौ ।

ब्रह्मसम्बन्धः–प्रथम ब्रह्मसंबंध, **दोषमात्रनिवृत्त्यर्थं**–सब दोषनकी निवृत्तिमात्रके लिये, **उच्यते**–कह्यो है। **गुणाधायकसम्बन्धः**–श्रीकृष्णको संबंधतो, **फलसामयिकः**–फलप्राप्तिके समय, **मतः**–श्रीमदाचार्यनने मान्यो है।

भाषा–विवरण ।

निर्दोष सम अक्षरब्रह्मके संग जो यह प्रथम संबंध है सो तो दोषनिवृत्ति मात्रके लिये है। और श्रीकृष्ण प्रकट

सर्वगुण हैं और अपने संबंधसूं जीवमें भी आनंदादि स्वगुणनको प्रवेश करायवे वारे हैं तासूं उनको संबंध तो दोषनिवृत्ति भये पीछे फलदानके समय होयगो ॥ ३० ॥

विवृतिः ।

तस्मिन्वाच्ये कृष्णपदं वाच्यं कृष्णः फलात्मकः ॥
तत्सम्बन्धे स्वतःसिद्धे फलसंसिद्धिसंभवात् ॥ ३१ ॥
अपरा कृष्णसेवादिकृतिर्वैयर्थ्यमाप्नुयात् ॥

अन्वयार्थौ ।

तस्मिन्–फलरूप सम्बन्धके, **वाच्ये**–कहते समय, **कृष्णपदं**–कृष्ण शब्दको, **वाच्यं**–प्रयोग करेंगे । (यतः) **कृष्णः**–(कारण के) कृष्ण, फलरूप हैं । **तत्संबंधे**–श्रीकृष्णको संबंध, **स्वतःसिद्धे**–याही समय जो अपने आप सिद्ध होय, (तर्हि) **फलसंसिद्धिसंभवात्**–तो फलप्राप्तिके हो जायवेसूं, **अपरा**–अन्यसब, **कृष्णसेवादिकृतिः**–भगवत्सेवा सत्संग प्रभृति कर्म, **वैयर्थ्यं**–निरर्थकताकूं, **आप्नुयात्**–प्राप्त होजांय ।

भाषा–विवरण ।

श्रीकृष्ण फलरूप हैं तासूं फलप्राप्ति होते समय श्रीकृष्णको संबंध और श्रीकृष्ण शब्दको उपयोग होयगो । और जो या संबंधमें ही श्रीकृष्ण को संबंध भी मानलें तो फिर फलप्राप्ति होगई ऐसो माननो पडैगो, और फलप्राप्ति जब

होगई तो फिर भगवत्सेवा, सत्संग, कथा प्रभृति सब मार्ग को मार्ग व्यर्थ होयवेसूं नष्ट हो जायगो ॥ ३१ ॥

विवृतिः।

अतः साधनसम्बन्धो विवाह इव लौकिके ॥ ३२ ॥
तेन निर्दुष्टतासिद्धिर्विधिनेव रतौ पुनः ॥
ईदृक्संबंधबोधाय प्रोक्तं ब्रह्मपदं पुरा ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थौ।

अतः–तासूं, **लौकिके**–लौकिकधर्ममें, **विवाहः इव**–विवाहकी तरह, **साधनसम्बन्धः**–यह साधनरूपसंबंध है। **पुनः**–और, **विधिना**–विवाहविधिके द्वारा, **रतौ इव**–स्त्रीसंगमें जैसें (निर्दोषपनो सिद्ध होय है तैसें) **तेन**–या ब्रह्मसंबंधसूं **निर्दुष्टतासिद्धिः**–(भवति) निर्दोषपनो सिद्ध होय है। **ईदृक्संबंधबोधाय**–यह साधनरूपसंबंध है, यह दिखायवेके लिये (ही) **ब्रह्मपदं**–ब्रह्मशब्द, **पुरा**–सबसूं पहलें **प्रोक्तम्**–कह्यो है।

विवाह करनो यह लौकिक धर्म है। स्त्रीसंग में दोष न लगै ताके लिये यह करवे में आवे है। बिना विवाह किये स्त्रीसंग करवे में दोष है। और याहीसूं विवाह साधन संबंध है। ब्रह्मसम्बन्ध भी साधनसम्बन्ध है। 'ब्रह्म विदाप्नोति परं' या श्रुति में अक्षरब्रह्मसम्बन्धकूं पर-प्राप्ति को साधन कह्यो है। और यह संबंध अविद्यादि-दोषनिवृत्ति के लिये कियो जाय है। क्यों कि पर ब्रह्म

मुक्तोपसृप्य है । मुक्त भये विना पर ब्रह्म को संबंध नहीं हो सके है । ऐसें ही यहां भी यह ब्रह्मसंबंध साधन संबंध है । और दोषनिवृत्ति के लिये कियो जाय है । यह साधन सम्बन्ध है, यह दिखायवे के लिये ही सबसूं पहले अक्षर ब्रह्मशब्द को प्रयोग कियो है ॥ ३३ ॥

विवृतिः ।

विषमश्च हरिः कृष्णो न यायात्समतां यतः ॥
हेतुसम्बन्धसम्बन्धात्कृष्णः साधनतां गतः ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थौ ।

च–और, **हरिः**–सर्वदोष निवर्तक, **कृष्णः**–श्रीकृष्ण, **यतः**–जाकारणसूं, **समतां**–सब अधिकारीन के प्रति समानताकूं, **न यायात्**–नहीं प्राप्त होय सके हैं, (ततः) (ताहीसूं) **हेतुसम्बन्धसम्बन्धात्**–अक्षर ब्रह्म के सम्बन्धिके सम्बन्धसूं, **कृष्णः**–श्रीकृष्ण, **साधनतां**–साधनपनेकूं **गतः**–प्राप्त भये हैं ।

भाषा–विवरण ।

और यद्यपि श्रीकृष्ण सर्वदोष निवर्तक हैं तथापि वे सर्वाधिकार सम नहीं हैं । विषम हैं । और ताहीसूं साधन के सम्बन्ध के संबंध द्वारा आप भी साधन भये हैं । अक्षर-ब्रह्म साधन है । प्रथम ब्रह्मसंबंध के समय अक्षरब्रह्मको ही जीवकूं संबंध होय है तासूं साधन सम्बन्ध ही होय है ।

१–हेतोरक्षरस्य सम्बन्धो यस्य कृष्णस्य, तस्य सम्बन्धात् । (टिप्पणी प्राचीन है)।

किन्तु अक्षरब्रह्म को श्रीकृष्ण के साथ संबंध है तासूं सम्बन्धि सम्बन्ध होयवे सूं श्रीकृष्ण भी साधन हो गये ।३४।

विवृतिः ।

ब्रह्मेति प्रोच्यते सर्वसमत्वाद्दोषनिर्हृतेः ।
व्यापकत्वं च सम्बन्धे तेनैव विनिरूपितम् ॥ ३५ ॥

सर्वसमत्वात् दोषनिर्हृतेः–सब की समान रीति की दोष निवृत्ति करवेसूं, **ब्रह्म इति**–ब्रह्म एसें, **प्रोच्यते**–कह्यो जाय है । **च**–और, **तेन एव**–ब्रह्मपनेसूं ही, **सम्बन्धे**–सम्बन्धमें, **व्यापकत्वं**–व्यापकपनो, **विनिरूपितं**–कह दियो है ।

भाषा–विवरण ।

सर्वसमता दोषनिवृत्ति और व्यापकपनो ये तीन धर्म अक्षरमें हैं । सम्बन्धके संग ब्रह्मशब्दको प्रयोग करवेसूं यह स्पष्ट होय है के सबकी (अहंता ममतास्पदवस्तुनकी) समानरीतिसूं दोषनिवृत्ति होय है । और ब्रह्मशब्दसूं सम्बन्धमें व्यापकपनोभी आजाय है । अर्थात्, घरमें सूं एक जनेने जब ब्रह्मसंबंध लियो तब प्रथम प्रश्न यह होय है के वाके, तथा वाके आत्मीनयके, तथा अन्य जन (जिन जिनने संबंध लियो है) के संबंधमें कछु भेद है के नहि ? और दूसरो प्रश्न यह के, लेवे वारेकूं तो साक्षात्संबंध भयो है और वाके आत्मीयनकूं मानसिक भयो है । और यहभी वा

लेवेवारेके मनसूं भयो है, उनके मनसूं तो भयो है के नही यहभी संदेह ही है। तो उनकी दोष निवृत्ति भई कि नहि? और तीसरो प्रश्न यह कि आत्माके संबंध होयवेसूं आत्मीयनको संबंध अपने आप कैसे हो जाय है? इन तीनो प्रश्नन को उत्तर श्रीहरिरायचरणने ब्रह्मशब्द को अक्षरब्रह्म अर्थ करकें दे दियो। ब्रह्ममें सर्वसमता दोष निवृत्ति और व्यापकपनो है तासूं ही सर्वशंकानको निरास हो जाय है॥ ३५॥

विवृतिः।

करणोक्त्या न मुख्योऽत्र भावित्वान्मानसी कृतिः॥
युक्तः प्रथमसम्बन्धो भावात्मा भावरूपिणा॥ ३६॥

अन्वयार्थौ।

करणोक्त्या—करणशब्द को प्रयोग कियो है तासूं, **अत्र**—या ब्रह्मसम्बन्धमें, **मुख्यः**—मुख्य संबंध, **न**—नहीं होय है, (अत एव) (याहीसूं) **भावित्वात्**—मुख्य संबंध पीछें होयवेवारो है तासूं, **कृतिः**—सब चेष्टाएं, **मानसी**—मनसूं ही होंय हैं। **भावरूपिणा**—(सह)—भावात्मा श्रीकृष्णके संग, **प्रथमसम्बन्धः**—साधनरूपसम्बन्ध, **भावात्मा**—भावात्मक होनो ही, **युक्तः**—ठीक है।

भाषा-विवरण।

यह ब्रह्मसंबंध श्रीकृष्णके संग मुख्य नहीं, गौण संबंध है। किन्तु अक्षर ब्रह्मके संग मुख्य है। और याहीसूं मूलमें

'**ब्रह्मसंबंधकरणात्**' करण शब्द दियो है । श्रीकृष्ण के संग मुख्यसंबंध तो फलसमयमें होयगो, और ताहीसूं या समय श्रीकृष्णके संबंधकी सब क्रियाएं भावात्मक हैं। और यह बात ठीकभी है—क्यों के संबंधी के संबंधी होय वेसूं या समय श्रीकृष्ण भावरूपी हैं, और भावरूपी के संग भावात्मक ही प्रथम संबंध होनो ठीक है । 'करण' शब्द को यह तात्पर्य है के यह जो साधनरूप ब्रह्मसंबंध होय है यामें अक्षर ब्रह्म मुख्य है । और फल होयवेसूं तथा भावी होयवेसूं और भावात्मक होयवेसूं श्रीकृष्ण गौण हैं । ब्रह्मसंबंधिनी कृति मुख्य है किन्तु कृष्ण संबंधिनी कृतिभी गौण है । ब्रह्मको सम्बन्ध साक्षात् होयवेसूं मुख्य है और श्रीकृष्णको संबंधभी अक्षरद्वारा होयवेसूं गौण है । या समय श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णसंबंधिनी कृति और श्रीकृष्णको संबंध यह सब भावात्मक हैं । याविषयमें श्रीहरिरायचरण वरवधू विवाहको दृष्टान्त दे आये हैं वह अत्यन्त समीचीन है और मननीय है ॥ ३६ ॥

विवृतिः ।

अग्रिमोपि तथाभूतः सर्वथा नात्र संशयः ॥
विशेषः परमेतावान् प्रथमो मानसो मतः ॥ ३७ ॥
सर्वेन्द्रियैस्तथा चान्तःकरणैरात्मनापि हि ॥
साक्षात्स्वरूपसम्बन्धो द्वितीय इति निश्चयः ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थौ ।

अग्रिमः अपि–फलरूप सम्बन्ध भी, **सर्वथा**–जरूर, **तथाभूतः**–भावात्मक, (भविष्यति) (होयगो) **अत्र**–यामें, **संशयः**–संदेह, **न**–(अस्ति) नहीं है। **परं**–किन्तु (द्वयोः) (दोनोनमें) **एतावान्**–इतनो, विशेषः (अस्ति) फरक है, **प्रथमः**–पहलो, **मानसः**–मन के संग, **स्वरूपसम्बन्धः**–अक्षरसम्बन्ध, **मतः**–मान्यो है, **तथा**–और, **द्वितीयः**–फल रूप संबंध, **सर्वेन्द्रियैः**–सब इन्द्रियनसूं, **च**–और, **अन्तःकरणैः**–भीतरके इन्द्रियनसूं, **हि**–और, **आत्मना अपि**–आत्मासूं भी, **साक्षात् स्वरूपसम्बन्धः** (भवति)–मूलस्वरूप के संग संबंध होय है, **इति**–यह, **निश्चयः**–निश्चय है, स्वरूपसंबंध शब्द की दोनो संबंध में आवृत्ति होय है।

मूलस्वरूप के भी दो प्रकार के प्राकट्य हैं। एक बहिः, और दूसरो भीतर मनमें। अवतार दशामें बहिः प्राकट्य होय है। और अनवतारदशामें भक्तिके द्वारा भीतर मनमें प्राकट्य होय है। यह मनमें प्रकट भयो मूलस्वरूप भावात्मक कह्यो जाय है। विप्रयोगरस ही प्रभु को मूल स्वरूप किंवा साक्षात्स्वरूप है। अक्षरब्रह्म भी प्रभु को स्वरूप ही है। जैसे अक्षर के संग साधनसंबंध भावात्मक होय है तैसे अनवतार दशामें ही साक्षात्स्वरूप के संग फलात्मक संबंध भी भावात्मक ही होय है, यामें सन्देह नहीं। तथापि दोनो संबंधमें

इतनो भेद रहे है। जैसे विवाह के समय वधू को वर के प्रत्यक्ष रहते भी वाके मानसिक रूपान्तर के संग केवल मानसिक ही संबंध होय है। ऐसें ही साधन सम्बन्ध होते समय जीव को संबंध, श्रीकृष्ण के नित्य विराजते रहते भी अक्षरस्वरूप रूपान्तर के द्वारा मानसिक ही होय है, अर्थात् अक्षरब्रह्मके द्वारा श्रीकृष्ण के संग होयवेसूं और मानसिक होय वेसूं गौण होय है। और गर्भाधान के समय जैसे वधू को वर के संग संबंध साक्षात्, इन्द्रियनसूं, अन्तःकरणसूं, तथा शरीरसूं होय है। तैसें ही फलात्मक द्वितीय संबंधके समय चेतन को अन्तःप्रकट मूलस्वरूप के संग साक्षात्, अलौकिक-सर्वेन्द्रियसूं, अन्तःकरणसूं, और निजरूपसूं भी संबंध होय है, यह भेद है। जा समय जीव, ब्रह्मसंबंध (साधनसम्बन्ध) ग्रहण करे है वासमय अक्षरस्वरूप और साक्षात्स्वरूप दोनो-नको साक्षात्कार नहीं है तासूं भावात्मक संबंध होते भी केवल मनसूं होय है। किन्तु द्वितिय फलात्मक संबंध होते समय तो प्रभु के अन्तःप्रकट होयवेसूं भावात्मकतामें समानता रहते भी साक्षात् मूल स्वरूप के संग इन्द्रियान्तः-करण आत्मासूं संबंध होय है यह विशेष है॥ ३७-३८॥

विवृतिः।

परं तत्रेन्द्रियादीनां कृत्यादीनां च सर्वथा॥
भावात्मकत्वं मन्तव्यं तादृग्रूपानुभूतितः॥ ३९॥
अप्राकृतत्वं चैतद्धि बोध्यं स्यादिन्द्रियात्मनाम्॥

अन्वयार्थौ ।

परं–किन्तु, **तत्र**–फलात्मक संबंधमें, **इन्द्रियादीनां**–इन्द्रियान्तःकरणादिकनकूं, **च**–और, संग आदि क्रियानकूं, **तादृग्रूपानुभूतितः**–भावात्मकप्रभुके प्रकट होयवेसूं, **सर्वथा**–जरूर, **भावात्मकत्वं**–भावात्मकपनो **मन्तव्यं**–माननो चहिये । **च**–और, **एतत् हि**–ये ही, **इन्द्रियात्मनां**–इन्द्रिय आत्मा आदिको **अप्राकृतत्वं**–अप्राकृतपनो (अलौकिकपनो) **बोध्यं**–जाननो चहिये ।

भाषा–विवरण ।

अनवतारदशामें मूलस्वरूप प्रभु अन्तः भावात्मक रूपसूं प्रकट होंय हैं यह हम कह आये । तासूं फलात्मक संबंध समयमें जिन (इन्द्रियान्तःकरणस्वरूप)को प्रभुके साथ संबंध होय है वे इन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा सब भावात्मक हैं ऐसें समझ राखनो चहिये । और भावात्मकता होनो ही इन्द्रिय अन्तःकरण और आत्माको अलौकिकपनो है ॥३९॥

विवृतिः ।

मानसे पूर्वसम्बन्धे या कृतिस्तनुवित्तजा ॥ ४० ॥
सा हि साधनतां प्राप्ता प्राकृतेन्द्रियदेहजा ॥
यथोक्तमस्मदाचार्यैस्तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थौ ।

मानसे–मनसूं होयवेवारे, **पूर्वसंबंधे**–साधनसम्बन्धभये पीछे, **या**–जो, **तनु–वित्तजा**–शरीर और धनसूं

करवेमें आती, **प्राकृतेन्द्रियदेहजा**–लौकिक इन्द्रिय देहादिसूं करी, **कृतिः**–क्रिया, **सा**–वो, **साधनतां**–साधनपनेकूं, **प्राप्ता**–प्राप्त होय है, **हि**–यह निश्चय है। **यथा**–जैसे, अस्मदाचार्यैः—हमारे श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीने, '**तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा**'–'फलात्मक प्रेमकी सिद्धिके लिये तनुजा वित्तजा भगवत्क्रिया करनी चहिये,' (इति) उक्तं–यह सिद्धान्तमुक्तावलिमें कह्यो है।

भाषा-विवरण।

भावात्मक करवेमें आते प्रथम ब्रह्मसम्बन्धसूं लेकें फलात्मक संबंध के पूर्व, प्राकृत देह इन्द्रिय और अन्तःकरणादिसूं वेदोक्त मर्यादा सहित जो जो तनुजा वित्तजा प्रभृति भक्तिमार्गीय क्रियाऐं करवेमें आमें हैं वे सब प्रभुके प्रेम होयवे में साधनताकूं प्राप्त होय हैं। जिनके उपर प्रभुको अनुग्रह भयो है वे लोक या प्रकार क्रमसुं साधनसम्बन्धसूं लेकें तनुजा वित्तजा पर्यन्त भगवद्धर्मनको आचरण करैं हैं, और उनसूं उनकूं प्रभुप्रेमकी प्राप्ति होय है। यह बात श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणने सिद्धान्तमुक्तावली में कही है 'प्रेमरूपा सेवाकी सिद्धिके लिये तनुजा वित्तजा सेवा करनी चहिये ॥ ४०–४१ ॥

विवृतिः।

एतादृशस्य योगस्य सकृत्करणमात्रतः ॥
अयोग्यानां च योग्यानां सर्वेषामधिकारिणाम् ॥४२॥

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां ब्राह्मणादेरपि स्वतः ॥
ज्ञानाज्ञानविभेदेन हीनमध्याधिकारिणाम् ॥ ४३ ॥
श्रीकृष्णसात्कृतासूनामुत्तमाधिकृतावपि ॥
भवति ब्रह्मसम्बन्धः समत्वात्सकलान्प्रति ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थौ ।

एतादृशस्य–या प्रकार के, **योगस्य**–सम्बन्ध के, **सकृत्**–एक वखत, **करणमात्रतः**–करवे मात्रसूं, **अयोग्यानां**–अयोग्यनको, **च**–और, **योग्यानां**–योग्यनको, **स्त्री शूद्रद्विजबन्धूनां**–स्त्री शूद्र और व्रात्यनको, **स्वतः**–जाति और कर्मसूं उच्च, **ब्राह्मणादेः अपि**–ब्राह्मणक्षत्रियादिको भी, **ज्ञानाज्ञानविभेदेन**–ज्ञानी और अज्ञानीन को, **हीनमध्याधिकारिणां**–हीन मध्यम अधिकारीन को (और), **उत्तमाधिकृतौ**–उत्तमाधिकार में (स्थित) **श्रीकृष्णसात्कृतासूनां अपि**–श्रीकृष्ण के लिये ही देहादिकनको उपयोग करवे वारेनको भी, (एवं) (ऐसें) **सर्वेषां अधिकारिणां**–सब अधिकारीनको, **ब्रह्मसम्बन्धः**–ब्रह्म के संग संबंध, **भवति**–होय जाय है। (यतः)-(कारण के) **सकलान् प्रति**–सब के प्रति, **समत्वात्** ब्रह्म अथवा अक्षरब्रह्म को संबंध समान है तासूं ॥

भाषा–विवरण ।

निर्दोष और सम ब्रह्म को यह साधनरूप संबंध, सब के प्रति समान है तासूं, अवस्थादिसूं योग्य अयोग्य स्त्री शूद्र

कर्मच्युत ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ज्ञानी अज्ञानी अल्पज्ञान कनिष्ठ मध्यम उत्तम, कैसो भी अधिकारी क्यों न हो, सबकूं समान रीति सूं होय है ॥ ४२–४३–४४ ॥

विवृतिः ।

पुरुषोत्तमरूपत्वान्न चिन्ता तदनुग्रहे ॥
नवा समागतां कन्यां त्यजेत्पुरुषकेसरी ॥ ४५ ॥
न च सामर्थ्यसहितः कुर्यात्काञ्चिद्विचारणाम् ॥
बलादङ्गीकृतिकृतिर्न गृहीयात्समर्पितम् ॥ ४६ ॥
अतो न चिन्ता लेशोपि विधेयः स्वीकृतौ हरेः ॥
एतदेवास्मदाचार्यैर्नवरत्ने निरूपितम् ॥ ४७ ॥
' तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे ' ॥

अन्वयार्थौ ।

पुरुषोत्तमरूपत्वात्–पुरुषश्रेष्ठ होयवेसूं, **तदनुग्रहे**-भगवदनुग्रहमें, **चिन्ता**–सोच, **न**–नहीं है । **वा**–और, **पुरुषकेसरी**–पुरुषसिंह प्रभु, **समागतां**–स्वतः प्राप्त, **कन्यां**–कन्याकूं, **न**–नहीं, **त्यजेत्**–छोडे । **च**–और, **सामर्थ्यसहितः**–अलौकिक सामर्थ्यवारो प्रभु, **कांचित्**-कैसोभी, **विचारणां**–विचार, **न कुर्यात्**–नहीं करै । **बलात्**–जबरदस्ती, **अङ्गीकृतिकृतिः**–अङ्गीकार जाको कार्य है वह, **समर्पितं**–समर्पित पदार्थकूं, **न गृह्णीयात्?** स्वीकार न करै ? करै ही । **अतः**–तासूं, **हरेः**–श्रीकृष्ण के, **स्वीकृतौ**–स्वीकार करवे में, **चिन्तालेशः अपि**–थोडी

भी चिन्ता, **न विधेयः**—न करनी चहिये । **एतत् एव**—ये ही, **अस्मदाचार्यैः**—हमारे आचार्यनने, **नवरत्ने**—नवरत्न में, **निरूपितं**—कह्यो है के, 'तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्री पुरुषोत्तमे' 'श्री पुरुषोत्तम के जीव को स्वीकार करवे में चिन्ता नहीं करनी चहिये'।

भाषा-विवरण ।

प्रभु पुरुषोत्तम हैं तासूं अनुग्रह करेगें ही; कोई भी पुरुष सिंह स्वतः प्राप्त योग्य कन्या को परित्याग नहीं करे है तो सर्वसामर्थ्य सहित प्रभु जीव के स्वीकार करवेमें कोई विचार अथवा विलम्ब नहीं करेंगे । जो पुरुष केसरी को स्वभाव बलसूं अपनो भाग लेलेवे को है वह दीनतासूं समर्पित पदार्थकूं क्यों न ग्रहण करैगो । आचार्यश्रीने नवरत्न ग्रन्थमें कह्यो है के 'निवेदनमें श्री पुरुषोत्तम विषयिणी चिन्ता न करनी' तासूं प्रभुके स्वीकार करवे में तो चिन्ता लेश भी न करनो चहिये ॥ ४५–४६–४७ ॥

विवृतिः ।

अयमेवात्र संस्कारो मन्तव्यः कृष्णसेवने ॥ ४८ ॥
उपदेशस्तु सावित्र्या यथा वैदिककर्मणि ॥
तापक्लेश गुणाधानं शुद्धिवच्च समर्पणात् ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थौ ।

अत्र—या मार्गमें, **कृष्णसेवने**—भगवत्सेवाके पूर्व,

अयमेव–यह ब्रह्म सम्बन्ध ही, **संस्कारः**–संस्कार, **मन्तव्यः**–माननो चहिये ।

यथा–जैसे, **वैदिककर्मणि**–वेदोक्तकर्मनमें, **सावित्र्याः**–गायत्रीको, **उपदेशः तु**–उपदेश तो करवेमें आवेही है । **च**–तेसें ही **समर्पणात्**–आत्मा आत्मीयपदार्थनको अर्पणकरवेसूं, **शुद्धिवत्**–शुद्धिपूर्वक, **तापक्लेशगुणाधानं**–(भवति) वियोगताप गुणको आवेश होय है ।

भाषा-विवरण ।

संस्कार दो प्रकारके होंय है, दोष निरास और गुणाधान । मीमांसामें वेदपर्युक्षण और इष्टकाञ्जन दोनो संस्कार हैं । वेद अर्थात् कुशपुञ्जीकूं मार्जन करवेसूं वाको दोषनिवृत्ति संस्कार होय है । और इष्टका अर्थात् वेदीमें काम आयवे वारी ईंटनकूं घीसूं चुपडवेसूं गुणाधानरूप संस्कार होय है । वैदिकर्म करवेके पहले भी कितने ही संस्कार होंय हैं । अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास, चातुर्मास, निरूढ पशु, और अग्निष्टोम, ये पांच वेदोक्त प्रधान कर्म हैं । जहांतक दोषनिवृत्ति और गुणाधान संस्कार न होंय वहांतक इन कर्मनको अधिकार नही है । यज्ञोपवीतसूं दोषनिवृति और गुणाधान संस्कार होयकें पूर्वोक्त कर्मनको अधिकार प्राप्त होय है । कामचारादि स्वतन्त्र व्यवहाररूप दोषनकी निवृत्ति होय है, सावित्री आदि वेदको अध्ययन होवेसूं गुणाधान होय

है। ऐसेंही या ब्रह्मसंबंधसूं अहंताममता आदि दोषनकी निवृत्ति होयके तापक्लेश गुणको आधान होय है ॥४८-४९॥

विवृतिः ।

यथा हि संस्कृतः शुद्धः कर्ममार्गेऽभिधीयते ॥
भक्तिमार्गे तथा तापक्लेशैः शुद्धो निरूप्यते ॥ ५० ॥

अन्वयार्थौ ।

यथा–जैसे, **कर्ममार्गे**–वेदोक्त धर्ममार्गमें, **संस्कृतः**–यज्ञोपवीतसंस्कारवारो, **शुद्धः**–शुद्ध, **अभिधीयते**–कह्यो जाय है, **तथा**–तैसें, **भक्तिमार्गे**–भक्तिमार्गमे, **तापक्लेशैः**-भगवद्विरहार्त, **शुद्धः**–शुद्ध, **निरूप्यते**–कह्यो जाय है ।

भाषा-विवरण ।

अग्निहोत्रादिधर्ममार्गमें उपवीतसंस्कारसूं शुद्ध होय है तो भक्तिमार्गमें ब्रह्मसंबंध द्वारक भगवान्‌के प्रेममें हृदय गद्गद और नेत्राश्रु होयवेसूं शुद्ध कह्यो जाय है ॥ ५० ॥

विवृतिः ।

शुद्धो यत्कुरुते कर्म तत्सर्वं सफलं यथा ॥
तथाऽत्र तापक्लेशार्तकृता सेवापि मानसी ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थौ ।

यथा जैसे, **शुद्धः**–शुद्ध अधिकारी, **यत् कर्म**–जो कर्म, **कुरुते**–करै, **तत् सर्वं**–वह सब, **सफलं**–सफल, (भवति) (होय है) तथा–तैसें, **अत्र**–यहां **तापार्तकृता**–तापा-

तेकी करी, **मानसी**–प्रेमलक्षणा, **सेवा अपि**–परिचर्याभी, सफल होय है ।

भाषा-विवरण ।

धर्ममार्गमें शुद्धाधिकारी जो जो कर्म करै वह सफल होय है एसें भक्तिमार्ग में भी ब्रह्मसंबंध तापक्लेशसूं शुद्धाधिकारी की करी मानसी सेवा भी भगवत्प्राप्ति करावे है ॥ ५१ ॥

विवृतिः ।

संस्कारत्वे तु सम्बन्धो देहमात्रं विशोधयेत् ॥
गायत्रीवन्न वै जीवमित्याशङ्क्यात्र चोदितम् ॥ ५२ ॥
सर्वशोधकतासिद्ध्यै पदं यद्देहजीवयोः ॥

संस्कारत्वे तु–संस्कारपनो मानो तो, **सम्बन्धः**–ब्रह्मसंबंध, **गायत्रीवत्**–गायत्री की तरह, **देहमात्रं**–केवल देहकूं, **विशोधयेत्**–शुद्धकरसकै, **जीवं**–जीवकूं, **न वै**–नहीं शुद्ध करसकै, **इति**–या प्रकारसूं, **अत्र**–यहां, **आशङ्क्य च**–आशंका करके ही, **सर्वशोधकता सिद्ध्यै**–देहजीवादि सब की शुद्धि होयवे के लिये, **यत्**–यह **'देहजीवयोः' पदं**–देहजीवपद, **उदितं**–कह्यो है ।

भाषा-विवरण ।

यहां यह आशंका होय है के–यदि ब्रह्मसंबंध कूं संस्कार मानोगे तो जैसे गायत्र्युपदेश देहकूं पवित्र करे है वैसे यह संबंधभी देहमात्रको शोधन करेगो, जीव तो अशुद्ध ही रह जायगो । ताके उत्तरमें कहें हैं के–सिद्धान्तरहस्य मूलमें

याहीं सूं **देहजीवयोः** यह पद कह्यो है । अर्थात् ब्रह्मसंबंध सूं केवल देह के ही नहीं जीव के भी दोषन की निवृत्ति होय है, देह जीव दोनोनकी शुद्धि होय है ॥ ५२ ॥

विवृतिः ।

जीवशुद्धिरविद्यातः संसाराद्विस्मृते हरेः ॥ ५३ ॥
अशुद्धिस्तदभावात्मा ब्रह्मसंबंधतस्तु सा ॥
भवति, ब्रह्मसम्बन्धे ह्यहन्ताममतागतिः ॥ ५४ ॥
तापक्लेशे च भगवत्स्मृतिः सार्वदिकी मता ॥
अतः शुद्धो हि योग्यस्तु भगवद्भजने मतः ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थौ

हरेःविस्मृतेः–भगवानकूं भूलजायवेरूप, **अविद्यातः**–अविद्यासूं, **संसारात्**–संसारसूं, **अशुद्धिः**–(भवति)अशुद्धि होय है । **तदभावात्मा**–संसारको न होनो रूप **जीवशुद्धिः**–(कथ्यते) जीवकी शुद्धि कही जाय है । **ब्रह्मसंबंधतः**–ब्रह्मसंबंधसूं, **सा**–वह (जीवशुद्धि), **भवति**–होय है, **ब्रह्मसम्बन्धे**–ब्रह्मसंबंध भये पै, **हि**–निश्चयकरके, **अहन्ताममतागतिः**–मे मेरोपनकी निवृत्ति, **च**–और **तापक्लेशे**–विरहार्ति भये पै, **सार्वदिकी**–सदाके लिये होवे वारी, **भगवत्स्मृतिः**–प्रभु की स्मृति, **मता**–मानी है । **अतः**–यातरहसूं, **शुद्धः हि**–शुद्धही **भगवद्भजने तु**–भगवत्सेवामें तो, **योग्यः**–योग्य, **मतः**–मान्यो है ।

भाषा-विवरण ।

अस्मृति, अन्तःकरणाध्यास, प्राणाध्यास, इन्द्रियाध्यास, और देहाध्यास, यह पंचपर्वा अविद्या है। यद्यपि ये पाचों पर्व हैं तथापि चार पर्व सहित अस्मृति ही मुख्य अविद्या है। अस्मृति नाम भगवान्कूं भूल जानो । भगवान् के भूल जायवेसूं ही जीव कूं अहंभाव ममभाव होय हैं और या अहंता ममता संसार के द्वारा ही जीव अशुद्ध हो जाय है। यह सब दूर हो जानो ही जीव की शुद्धि कही जाय है। ब्रह्म के साथ संबंध सिद्ध भये पै अहंता ममता सर्वथा दूर हो जाय है। और तापक्लेश होयवेसूं प्रभुको सर्वदा-को स्मरण प्रादुर्भूत होय है। या तरहसूं शुद्ध भयो जीव ही भगवत्सेवा में अधिकारी मान्यो है ॥ ५३–५४–५५ ॥

विवृतिः ।

निवृत्तिरत्र दोषाणामेकदैव विवक्षिता ॥
अतःसर्वपदं प्रोक्तं दोषाणां विनिवर्तने ॥ ५६ ॥

अन्वयार्थौ ।

अत्र–यहां, **दोषाणां**–दोषनकी, **निवृत्तिः**–दूर होनो, **एकदा एव**–एक संग ही, **विवक्षिता**–कही गई है। **अतः**–ताहीसूं, **दोषाणां**–दोषनकी, **विनिवर्तने**–निवृत्तिमें, **सर्वपदं**–सर्व पद, **प्रोक्तं**–कह्यो है।

भाषा-विवरण ।

ब्रह्मसंबंध भये पै दोषनको दूर होनो (नाश नहीं)

एक साथ ही होय है । पांचों दोष एक संग ही भगवत्सेवामें अबाधक होंय हैं। नष्ट नहीं । और याही सूं मूल में '**सर्वदोषनिवृत्तिः**' या पद में '**सर्व**' शब्द कह्यो है ॥ ५६ ॥

विवृतिः ।

दोषत्वेनैव दोषाणां संग्रहस्तु निरूपितः ॥
न प्रत्येकमपारत्वात्ते शक्यन्त उदीरितुम् ॥ ५७ ॥

अन्वयार्थौ ।

दोषत्वेन एव—दोषपनेसूं ही, **दोषाणां**—दोषनको, **संग्रहः तु**—संग्रह तो, (यहां) **निरूपितः**—निरूपण कियो है । (अन्यथा) **ते**—वे, **अपारत्वात्**—अगणित होयवेसूं, **प्रत्येकं**—एक एक, **उदीरितुं**—कहवे, में **न शक्यन्ते**—नहीं आसकें हैं ॥

भाषा-विवरण ।

दोष अगणित हैं तथापि उनमें दोषपनो सबमें एक है। वा एक दोषपनकूं ही लेके—ही जातिपनेकूं मानकें एकदोषमें सब दोषनको समावेश कर लीनो है । जो ऐसो न करें तो अपार दोष होयवेसूं एक एकके कहवेमें एक दूसरो ग्रन्थ तैयार हो जाय तथापि उनको पार न आवै ॥ ५६ ॥

यहां यह प्रश्न होय है के जो एक ही दोषमें सब दोषनको समावेश हो जाय है तो फिर पांच दोष क्यों गिनाये ताके उत्तरमें कहें हैं—

विवृतिः ।

बुद्धिसौकर्यसिद्ध्यर्थं तत्पञ्चविधतोदिता ॥
दुष्यन्ति यैस्तु हाद्या जीवाः, कृष्णोपयोगतः ॥ ५८ ॥
निवर्तन्ते सर्वथैव ते दोषाः परिकीर्त्तिताः ॥

अन्वयार्थौ ।

तत्पञ्चविधता–उनके पांच प्रकार, **बुद्धिसौकर्यसिद्ध्यर्थं**–समझवेमें सरलता पडवे के लिये, **उदिताः**–कहे हैं। **यैः**–जिनके द्वारा, **देहाद्याः**–देहादिक, (और) **जीवाः**–जीव, **दुष्यन्ति**–दोषवारे हो जाय ह, **तु**–और, **कृष्णोपयोगतः**–श्रीकृष्णके उपयोगमें आयवे सूं, **सर्वथा एव**–एकदम ही, **निवर्तन्ते**–अबाधक हो जांय हैं, **ते दोषाः**–वे दोष, (अत्र) (यहां) **परिकीर्तिताः**–कहे गये हैं।

भाषा–विवरण ।

दोष एक ही है किन्तु वाके पांच प्रकार हैं। किन्तु यहां जो एक ही दोष कह देते तो मन्दमध्यमाधिकारीनकूं यह बात समझवेमें नहीं आती। तासूं वा एक दोष के पांच करके यहां कह दिये हैं । कितने ही दोष ऐसें हैं जिन के आयवे सूं देहजीवादिक दूषित हो जायं हैं और जीव भगवद्विमुख हो जाय है तासूं ऐसे दोषन के पांच यूथ बनायकें यहां कहदिये हैं ॥ ५८ ॥

विवृतिः ।

निवृत्तिस्तु द्विधा दूरीकृतेः शुद्धिकृतेरपि ॥ ५९ ॥

आद्या तु वस्त्रमालिन्यनिवृत्तिरिव शोधकैः ॥
द्वितीया मृण्मयस्येव पाकेनेव च शुद्धता ॥ ६० ॥

अन्वयार्थौ ।

निवृत्तिः तु–निवृत्ति तो, **दूरीकृतेः**–नाशकरवेसूं, (और) **शुद्धिकृतेः अपि**–शुद्धकरवेसूं भी, **द्विधा**–दोतरहसूं (भवति) (होय है)। **आद्या तु**–प्रथम तो, **शुद्धता**–शुद्धपनो, **शोधकैः**–शुद्धकरवेके पदार्थनसूं, **वस्त्र-मालिन्यनिवृत्तिरिव**–वस्त्रके मैलेपनकी शुद्धताकी तरह, (होय) **च**–और, **द्वितीया**–दूसरी, **शुद्धता**–शुद्धता, **मृण्मयस्य इव**–माटीके बासनके, **पाकेन इव**–पकजायवे सूं जैसें (तैसें) होय है।

भाषा-विवरण।

दोषनकी विवृत्ति दो प्रकारकी होय है। एक दोषनके नाश होयवेसूं, और दूसरी दोषनके पवित्र होयवेसूं। जैसें मलिनवस्त्रकूं क्षार आदिसूं धोयवेसूं वाके मैलको नाश हो जाय है यह भी मैलकी निवृत्ति है। और माटीके बासनकूं अग्निमें पकायवेसूं वाके मैलेपनको लालरूप करदेनो यह भी मैलेपन की निवृत्ति ही है ॥ ६० ॥

विवृतिः ।

सदोषाङ्गीकृतेस्तस्यास्तगदतो व्यर्थता भवेत् ॥
अतोऽत्र विनिवृत्तिस्तु द्वितीयैव हि युज्यते ॥ ६१ ॥

अन्वयार्थौ ।

सदोषाङ्गीकृतेः–दोषसहितको अङ्गीकार होयवेसूं, **तद्गतौ**–दोषनके नाश होजायवेपै, **तस्याः**–पुष्टिकी, **व्यर्थता**–निरर्थकता, **भवेत्**–हो जाय है । **अतः**–तासूं, **अत्रतु**–ब्रह्मसम्बन्ध भयेपै तो, **द्वितीया एव**–रूपान्तर-करदेनो–दोषनिवृत्ति, **युज्यते**–होयसके है । **हि**–और यह बात ठीकभी है ।

भाषा-विवरण ।

निर्दोष और साधन सहित को अङ्गीकार करनो यह मर्यादा को स्वरूप है । और सदोष और असाधन को अङ्गीकार करनो पुष्टि को स्वरूप है । या समयमें कलिदोषसूं असाधन और पंच दोषवारे जीवही बहुधा हैं, और उन को अङ्गीकार करकें प्रभुने प्रथम पुष्टिकी (ब्रह्मसंबंधकी) स्पष्टता करी है । अब जो दोषन को सर्वनाशही हो जाय तो फिर सदोषाङ्गीकार और पुष्टिदान निरर्थक हो जांय । तासूं ब्रह्मसंबंध भयेपै दूसरे प्रकारकी अर्थात् दोषनको रूपान्तर करदेनोही निवृत्ति होय है । क्यों के यह निवृत्ति, सम्बन्ध स्वीकार रूप पुष्टिकी सार्थकता बतायवे वारी है ॥ ६१ ॥

विवृतिः ।

एतदेवहि गङ्गात्वमित्यत्राऽग्रे निरूपितम् ॥
हिशब्दः सर्वदोषाणां निवृत्तौ युक्तिबोधकः ॥ ६२ ॥

अन्वयार्थौ ।

अग्रे–आगे, **गङ्गात्वं इत्यत्र**–'**गङ्गात्वं सर्वदोषाणां**' या श्लोकमें, **एतत् एव**–ये बात ही, **निरूपितं**–स्पष्ट कही है । **हिशब्दः**–मूलको हि शब्द, **सर्वदोषाणां**–सब दोषनकी, **निवृत्तौ**–या तरह की निवृत्तिमें, युक्तिबोधकः (अस्ति) युक्ति दिखायवे वारो है ।

भाषा-विवरण

आगें आठवें 'गङ्गात्वं सर्वदोषाणां' या श्लोकमें श्रीमद्वल्लभाचार्यश्री ही या वातकूं स्पष्ट करें है । गङ्गाके प्रवाहको संबंध होयवेपै जैसे अन्यजलनकी रूपान्तर प्राप्ति होयवेसूं दोषनिवृत्ति होय है, तैसें ब्रह्मसंबंध होयवेसूं भी वैसीही दोषनिवृत्ति होय है । अर्थात् जैसे मार्ग आदिके जल, पवित्रतम गङ्गाजलमें मिल जायवेपै जलस्वरूपसूं रहते भी अपवित्रता आदिद्वारा कोई तरहभी बाध नहीं करसके हैं, तैसेही ब्रह्मसंबंध भये पै पंचप्रकारक दोषभी कोईरूपान्तरसूं रहते भी सेवा आदिमें बाधक नहीं होय हैं। और मूलके दूसरे श्लोकमें भी हि शब्द भी या तरहकी दोषनिवृत्ति होय है यह स्पष्ट कर रह्यो है ॥ ६२ ॥

विवृतिः ।

कोटिसूर्याग्निरूपस्य सम्बन्धाद्दोषवारणे ॥
निश्चयार्थोपि बोद्धव्यः सत्यसंकल्पवाक्यतः ॥ ६३ ॥

अन्वयार्थौ।

कोटिसूर्याग्निरूपस्य सम्बन्धात्–कोटिसूर्य और अग्निकूं स्वरूप देवेवारे प्रभुके साथ संबंध होयवेसूं और **सत्यसंकल्पवाक्यतः**–'प्रभु सत्य संकल्प हैं' इत्यादि वाक्यनसूं (**हिशब्द**) **दोषवारणे**–दोषनिवृत्तिकरवेमें, **निश्चयार्थः अपि**–निश्चयार्थक भी, **बोद्धव्यः**–जाननो चहिये।

भाषा-विवरण

कोटि कोटि सूर्य और अग्निकूं स्वरूप देवेवारे अर्थात् अतिपवित्र अतिश्रेष्ठ प्रभुके साथ जीवको संबंध होय है। और प्रभुतो सत्य संकल्प हैं याहीसूं जीवनके दोषनकी निवृत्ति अवश्यही होयगी, ऐसें हि शब्दको यहां निश्चय अर्थभी समझलेनो उचित है। मूलके श्लोकमें हि शब्दकी आवृत्ति करके दोनों अर्थ समझलेने चहियें॥ ६२॥

मूलम्।

..................दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः॥ २॥
सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः॥
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कथंचन॥३॥

मूलार्थः।

दोष पांच प्रकार के हैं यह स्मृति आदिक में स्पष्ट है। उन स्मृत्युक्त दोषन के पांच प्रकार के यूथ ये हैं–सहज,

देशकालोत्थ, लोक वेद निरूपित, संयोगज, और स्पर्शज । इन पांचों प्रकार के दोष, ब्रह्म संबंध भयेसूं सेवा करवे में बाधक नहीं हैं, ऐसें माननो चहिये । ये दोष लोक और वेद में भी मिलें हैं ॥ २–३ ॥

विवृतिः ।

अविद्यारूपतस्तेषां संख्या चोक्ता तथा विधा ॥
स्मृता इति पदोक्तौ च प्रसिद्धिरपि बोधिता ॥ ६४ ॥
सर्वश्रुतिपुराणेषु लोके वेदेपि चैव हि ॥
तेषु पञ्चविधत्वोक्त्या तत्रैवान्यनिवेशनम् ॥ ६५ ॥

अन्वयार्थौ ।

अविद्यारूपतः–दोषमात्र अविद्या रूप होय हैं तासूं, **तेषां**–उनकी, **संख्या**–गिनती, **तथाविधा**–पांच प्रकार-की, **उक्ता**–कही । **च**–और '**स्मृता**' इति–**पदोक्तौ**-'**स्मृता**' या पद के कहवेमें, **सर्वस्मृतिपुराणेषु**–सब स्मृति पुराणनमें, **च**–और, **लोके**–लोकमें, **वेदे अपि**–और वेदमें भी, **प्रसिद्धिः अपि**–प्रसिद्धि भी, **बोधिता**–दिखाई है । **तेषु**–इन लोक शास्त्र निरूपित दोषनमें, **पञ्चविधत्वोक्त्या**–पांच प्रकार बताये हैं तासूं, **तत्र एव**–उनमें ही, **अन्यनिवेशनं**–बाकी रहे सब दोषनको समावेश कर लेनो ।

१–अत्र स्मृतीति पदं संभाव्यते । अन्यथा पुनरुक्तिर्भवति । किन्तु मुद्रितपुस्तकेषु अनवधानात् श्रुतीति मुद्रापितमिति तदेव रक्षितम् । विद्वद्भिस्तु स्मृतिशब्देन परिवर्तनीयम् ।

भाषा-विवरण।

दोषमात्र अविद्या के कार्य हैं तासूं अविद्यारूप हैं। अविद्या पांच प्रकार की है तासूं दोषनके भी पांच प्रकार के यूथ कहे हैं। इन दोषनकी प्रसिद्धि बतायवे के लिये मूल में '**स्मृता**' ये पद दियो है। अर्थात् स्मृति, पुराण, लोक, और वेद में, इन दोषन की प्रसिद्धि है। स्मृतिन में इन को वर्णन अच्छीतरह है तासूं स्मृति को साक्षात् उच्चारण कियो है। इन पांच प्रकार के यूथनमें ही बाकी रहे दोषन को निवेश कर लेनो, यह '**पंचविध**' शब्द सूं मालुम पडै है॥ ६५॥

विवृतिः।

देहेन सह जायन्ते जीवेनापि तथा पुनः॥
ते हि शूद्रत्वसंसारित्वादयः सहजा मताः॥ ६६॥

अन्वयार्थौ।

ये हि—शूद्रत्वसंसारित्वादयः—शूद्रपन और संसारिपन, **देहेन सह**—देहके साथ, **पुनः**—और, **तथा**—देहकी तरह, **जीवेन सह**—जीवके साथ भीः **जायन्ते**—पैदा होंय हैं, **ते**—वे दोष, **सहजाः**—सहजदोष, **मताः**—माने हैं।

भाषा-विवरण।

जो दोष उत्पत्ति के साथ ही पैदा होंय वे सहज दोष कहावें है। शूद्रपन कृष्णत्व कृशत्व आदि दोष देह के साथ

पैदा होय हैं तासूं ये सहज दोष हैं। और 'मे मेरो' ये दोष जीव के साथ पैदा होंय हैं तासूं ये भी सहज दोष हैं। अथवा '**तथा**' कहवे को यह भी आशय है कि यद्यपि जीव ब्रह्मांश ब्रह्म होयवेसूं निर्दोष है तथापि देहादि अध्यास के होयवेसूं वामें भी ये सहज दोष आय गये हैं। या अर्थमें दोनो सहज दोष दोनो के होय सकें हैं ॥ ६६ ॥

विवृतिः-शंका ।

नन्वासुरत्वं सहजं कथं न हि निवर्तते ॥
ब्रह्मसम्बन्धतः सर्वदोषदाहकतोपि हि ॥ ६७ ॥

अन्वयार्थौ ।

ननु–एक प्रश्न है के, **सर्वदोषदाहकतः**–सर्व दोषन के दाहकरवे वारे, **ब्रह्मसम्बन्धतः अपि**–ब्रह्मसंबंधसूं भी, **सहजं**–सहजात, आसुरत्वं–(दोषः) आसुरदोष, **कथं**–क्यों, **न हि**–नहीं, **निवर्तते**–दूरहोय है।

भाषा-विवरण ।

यहां एक यह प्रश्न होय है के जब ब्रह्मसंबंधसूं सब दोष निवृत्त हो जांय हैं तब सहज दोष असुरपनो ब्रह्मसंबंधसूं क्यों नहिं दूर होय है। श्रीमद्वल्लभाचार्यश्रीके ग्रन्थनसूं तथा गीता आदिसूं मालुम पडे है के सहज असुरपनो कोई साधननसूं दूर नहीं होय है। 'मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्' 'तदा आसुरो यं जीव इति निर्धारः' ॥ ६७ ॥

विवृतिः-उत्तरम् ।

इति चेत्सत्यमेवास्ति परं सम्बन्धसम्भवः ॥
दुर्लभस्तेषु तद्दोषाद्भक्तिमार्गाप्रवेशतः ॥ ६८ ॥
यथा कथञ्चित्सम्बन्धे तन्निवृत्तिरपीष्यते ॥
अत एवावतारे तु सम्बन्धात्तत्कृतार्थता ॥ ६९ ॥
परं रूपेण करणं न भक्त्येति विनिश्चयः ॥
इदानीं भक्तिमात्रेण ह्युद्धारो भगवन्मतः ॥ ७० ॥
तदा क्रोधादिभावेऽपि, नेदानीं तद्धि साधनम् ॥
भक्तिसाधनसत्वेन तेषां भक्तिविरोधतः ॥ ७१ ॥
सन्तो न कुर्युस्तत्सङ्गमिति सङ्गोपि दुर्लभः ॥
तस्मादनवतारे तु नासुराणां फलं भवेत् ॥ ७२ ॥

अन्वयार्थौ ।

इति चेत् सत्यम् एवअस्ति–ऐसें जो कोई शंका करै तो ठीक ही है **परं**–किन्तु **तेषु**–आसुरनमें, **तद्दोषात्**–आसुर दोष होयवेसूं, **भक्तिमार्गाप्रवेशतः**–भक्तिमार्गको प्रवेश ही नहीं होय है तासूं, **सम्बन्धसंभवः**–ब्रह्मको सम्बन्ध होनो ही, **दुर्लभः**–दुर्लभ है । **यथाकथंचित्**–जेसो तेसो, **सम्बन्धे**–साक्षात्संबंध होजाय तो, **तन्निवृत्तिः अपि**–आगन्तुक आसुरपने की निवृत्ति भी, **इष्यते**–शास्त्रने मानी है । **परं**–किन्तु, **करणं**–वह दूर-करनो भी, **रूपेण**–भगवत्स्वरूपसूं है, **भक्त्या न**–भक्तिसूं

नहीं है, **इति**–यह, **विनिश्चयः**–शास्त्रको निर्णय है। **अत एव**–याहीसूं, **अवतारे**–अवतारमें, **तु**–प्रकारान्तर को, **सम्बन्धात्**–सम्बन्ध होयवेसूं भी, **तत्कृतार्थता**–(भवति) उन को उद्धार होयं है। **इदानीं**–आजकाल, **भक्तिमात्रेण**–केवल भक्तिसूं ही, **उद्धारः** (भवेत्) उद्धार होय, **हि** यह, **भगवन्मतः**–प्रभु को मत है। **तदा** अवतार-अवस्थामें, **क्रोधादिभावे अपि** (उद्धारो भवति) क्रोध आदि भावरूप साधन होयवे पै भी उद्धार होय है। **तत्**–वह क्रोधादि **इदानीं**–आजकाल, **साधनं न**–साधन नहीं हो सकै है। **हि**–कारण के, **भक्तिसाधनसत्वेन**–(आजकाल) भक्तिरूप साधन विद्यमान है, (और) **तेषां**–आसुर लोगनकूं भक्तिमार्गसूं विरोध है तासूं। **तस्मात्**–तासूं, **अनवतारे तु**–अनवतार दशामें तो, **आसुराणां**–आसुरनकूं, **फलं**–फल, **न भवेत्**–नहीं होय।

भाषा-विवरण।

पूर्वोक्त प्रश्नको खण्डन अभ्युपगम वादसूं करें हैं–भगवान् को सम्बन्ध सर्वदोषनको नाश करवे वारो है यह सत्य–ठीक है, किन्तु आसुर लोगनको आजकाल प्रभुके साथ सम्बन्ध होनो ही दुर्लभ है। प्रथम तो यह सम्बन्ध साक्षात् प्रभु के साथ है नहीं, तासूं या सम्बन्धसूं तो उन को उद्धार किंवा उनकी आसुरभावनिवृत्ति होय नहिं।

यह सम्बन्ध अक्षर के साथ होते भी प्रभु पुष्टि के द्वारा वा को स्वीकार करे हैं, किन्तु आसुर के विषयमें प्रभु की भिन्नेच्छा 'तानहंद्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु'॥ होयवेसूं उन के संबंध को प्रभु स्वीकार ही नहीं करें हैं। और संबंध स्वीकार नहीं करवेसूं ही ऐसे लोगन को भक्तिमार्गमें प्रवेशही नहीं होय है। भक्तिमार्गमें प्रवेश नहीं होयवेसूं उन के हृदयमें भाव, रस, और विप्रयोगात्मक प्रभु को प्राकट्य नहीं होय, और याहीसूं उन को द्वितीय संबंध भी न होयवेसूं उन को उद्धार नहीं होय है। सम्बन्ध अनेक प्रकार के हैं उनमेसूं कोई तरह को भी संबंध यदि प्रभु के संग होजाय तो उन के आसुरपन की निवृत्ति हो सके है किन्तु अन्य प्रकार के संबंध तो साक्षात्प्रभु के साथ ही हो सकें हैं। और याहीसूं जा समय प्रभु प्रकट विराजते हते वा समय जिन जिन आसुरनके जैसे जैसे सम्बन्ध भये प्रभुने अपने स्वरूपबलसूं उन के वैसे वैसे संबंधद्वारा भी उनके आसुरत्व की निवृत्ति करके उन्हे सत्फल दियो। किन्तु वह सत्फल स्वरूपसूं भयो और होय है। आसुरनकूं सत्फल स्वरूपसूं ही होय है भक्तिसूं नहीं। अनवतार समय में श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकटित मार्ग द्वारा जो दैवजीवनको उद्धार होय है वह केवलभक्तिसूं होय है स्वरूपबलसूं नहीं। प्रभु की ही इच्छा ऐसी है।

प्रभुने पृथ्वी पै भक्ति को प्रचार करवेके लियें ही स्वमुखावतार श्रीआचार्यनको प्राकट्य कियो है । कोई समय प्रभु स्वस्वरूपसूं प्रकट होय हैं वह अवतार समय कह्यो जाय है । वा समय काम क्रोध भय आदि अन्यथा साधननसूं भी जीवन को उद्धार हो जाय है । असुरनको विशेष करके क्रोधादिभावसूं ही प्रभुको संबंध होय है । किन्तु प्रभु अपने स्वरूप बलसूं उन के साधनके तरफ न देख कें उद्धार कर दें हैं । आज कल वे क्रोधादि उद्धारमें साधन नहीं हो सके हैं । आजकल प्रभुने आचार्य द्वारा भक्तिमार्ग को प्रादुर्भाव करायो है तासूं भक्तिमार्ग के द्वारा ही सब को उद्धार करनो यह प्रभु की इच्छा है । किन्तु भगवद्भक्ति में असुरनको मन नहीं प्रवेश करे है प्रत्युत ये लोग भक्ति के तो विरोधी होय हैं । तासूं या समय में आसुरन को प्रभु के साथ सम्बन्ध होनो दुर्लभ है । और याहीसूं आसुरनके आसुर भावकी निवृत्ति किंवा उनको उद्धार नहीं होय है ।

यहां यह प्रश्न हो सके है के भलें स्वरूपसूं और भक्तिसूं आज कल आसुरनकूं सत्फल न मिलै किन्तु सत्संगसूं उनको उद्धार क्यों नहीं होय ? ।

ताको उत्तर एक तो ये है के आसुरन को सत्पुरुषनमें सद्भाव नहीं है तासूं वे उनको सङ्ग ही नहीं करैं । दूसरें जैसे असुर लोग सत्पुरुषनको सङ्ग नहीं करनो चाहें हैं

ऐसे सत्पुरुष भी उनसूं दूर ही रहनो चाहें है । सत्पुरुष असुरनको संग नहीं चाहें हैं । यों असुरनको सत्सङ्ग ही नही बन सके है तासूं आसुरनकूं अनवतार समयमें कोई तरह भी सत्फल नहीं होय है ॥ ६८-६९-७०-७१-७२ ॥

विवृतिः ।

अङ्गवङ्गादिगमनजनिता दैशिका मताः ॥
यथा परीक्षितः कालस्थानदानात्तथा पुनः ॥ ७३ ॥
कालावेशेन ये जातास्ते दोषाः कालिकाः स्मृताः ॥

अङ्गवङ्गादिगमनजनिताः (दोषाः)—अङ्गवङ्ग आदि निषिद्ध देशमें जायवेसूं भये दोष, **दैशिकाः**—देशोत्थदोष, **स्मृताः**—माने हैं । **तथा पुनः**—तैसें ही **यथा**—जैसें, **परीक्षितः**—परीक्षित राजाके, **कालस्थानदानात्**—कलियुगकूं स्थान देवेसूं **कालावेशात्**—कालके आवेश करके, **ये** (दोषाः) जो दोष, **जाताः**—पैदा भये, **ते दोषाः**—वे दोष कालिक दोष कहे जाय हैं ।

भाषा-विवरण ।

'अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु' इत्यादिवचनसूं मालुम पडै है के अङ्गवङ्ग आदि कितनेही देश यात्रा के सिवाय गमन निवास आदिमें निषिद्ध हैं । ऐसे देशनमें अगत्या जायवेसूं रहवेसूं जन्मसूं जो दोष आवें वे **देशोत्थ** दोष हैं । कलियुगकूं आदिलेकें कितने ही काल एसे हैं जिनके आवेशसूं

देहजीवादिमें दोष आजांय हैं । राजा परीक्षित बडे धर्मनिष्ठ राजा हे किन्तु कलियुगकूं दया करके स्थान देवेसूं उनमें भी कालको आवेश भयो । तदनन्तर राजासूं महदपराध बन्यो । या तरह कालके आवेशसूं जो दोष आवें वे **कालोत्थ** दोष कहे जांय हैं ॥ ७३ ॥

विवृतिः ।

यथा लोके राजसेवा योग्या नैव कुरूपिणः ॥ ७४ ॥
चातुर्यरहिता मूर्खा दुःशीलाः स्तेयकारिणः ॥
कुरूपित्वादयो दोषा अतस्ते लौकिकाः स्मृताः ॥७५॥

अन्वयार्थौ ।

यथा–जैसे, **लोके**–लोकमें, **राजसेवा**–राजाकी परिचर्या, **कुरूपिणः**–काणे अन्धे आदि कुरूपीके, **योग्या**–करसकवे लायक, **न एव**–नहीं है । (और) (ये) **चातुर्यरहिताः**–चतुराईसूं शून्य होंय, **मूर्खाः**–मूर्ख होंय, **दुःशीलाः**–बुरे स्वभावके होंय, **स्तेयकारिणः**–चोर होंय, उनसूं भी राजाकी सेवा नहीं करी जासकै । (तथा) (तैसैंही) (लोकके अनुसार) **कुरूपित्वादयः**–कुरूपीपनकूं आदि लेकें, ये सब दोष भगवत्सेवामें **लौकिक दोष** कहे जांय है ।

भाषा–विवरण ।

यह बात लोकमें देखवे में आवे है के जो चतुर न होय, अपढ होय, बुरे स्वभाववारो होय, चोर होय, कुरूपवारो

होय तो वह मनुष्य राजाकी खास सेवा नहीं करसके है तैसें ही लोकके अनुसार भगवत्सेवामें भी ये कुरूपपन आदि दोष लौकिक दोष माने गये हैं ॥ ७४-७५ ॥

विवृतिः ।

वेदोक्तविध्यकरणान्निषिद्धकरणादपि ॥
वैदिकास्ते समख्याता आज्ञाभङ्गो यतो हरेः ॥ ७६ ॥
सान्निध्यादेव दोषाणामेकोक्तिर्देशकालयोः ॥

अन्वयार्थौ ।

वेदोक्तविध्यकरणात्-वेदमें कही आज्ञाके पालन न करवेसूं, **निषिद्धकरणात् अपि**-(और) वेदनिषिद्ध काम करवेसूं भी, **यतः**-जाकारणसूं, **हरेः**-प्रभुकी, **आज्ञा-भङ्गः**-आज्ञा को भङ्ग, (भवति) (होय है) (ततः) (तासूं) **ते**-वे दोष, **वैदिकाः**-वैदिक दोष, **समा-ख्याताः**-कहे गये हैं । **सान्निध्यात् एव**-पासमेंही रहवेसूं, **देशकालयोः**-देशकालके, **दोषाणां**-दोषनको, **एकोक्तिः** (अस्ति)-एकपदमेंही कथन है ॥ ७६ ॥

भाषा-विवरण ।

'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उलङ्घ्य वर्तते । आज्ञाच्छेदी ममद्रोही मद्भक्तोपि न वैष्णवः' या वचनके अनुसार वेदोक्तधर्मनको यथाशक्त्यनुष्ठान करनो वैष्णवको कर्तव्य है किन्तु जो प्रमाद अथवा विस्मृति आदिकारणसूं वेदाज्ञाको

परिपालन न करै और अगत्या किंवा अशक्त्या अथवा कोई अन्य कारणसूं वेदनिषिद्धकाम बने होंय तो प्रभुकी आज्ञा भङ्ग करवे को यह दोष है । और या दोषकूं **वैदिक दोष** कहें हैं । देश और काल की बहुत करके लोक में एक शब्दमें ही सन्निधिकी प्रसिद्धि है तासूं यहां भी इनदोषनकूं एक शब्दमें ही दैशिक कालिक दोष दोनोनकूं कह दीने हैं ।

विवृतिः ।

निषिद्धकृतिजन्यानां तेषां लोकेपि सम्भवात् ॥७७॥
अपकीर्त्या लौकिकेषु साङ्कर्याद्वेदवर्तिनाम् ॥
अतस्तथैव ग्रन्थेस्मिन्नेकोक्तिर्लोकवेदयोः ॥ ७८ ॥
अतो दोषेषु संख्याया नाधिक्यमिह शङ्कितम् ॥

अन्वयार्थौ ।

तथा एव–दैशिक कालिक की तरह ही, **निषिद्धकृतिजन्यानां**–निषिद्धकर्मसूं पैदाभये, **तेषां**–उन दोषन को, **लोके अपि**–लोकमें भी सम्भव है तासूं, (और) **अतः**–याही सूं, अपकीर्त्या–बुराई होय वेसूं, **वेद वर्तिनां** वैदिक दोषनको, **लौकिकेषु**–लौकिक दोषनमें, **साङ्कर्यात्**–मेल होय जायवेसूं, **अस्मिन्ग्रन्थे**–या सिद्धान्त रहस्यमें, **लोकवेदयोः**–अर्थात् लौकिकवैदिक दोषनकी, **एकोक्तिः**–एक शब्दमें ही किंवा एक दोषमें ही गणना करी है । **अतः**–तासूं, **दोषेषु**–दोषनमें, **इह**–या ग्रन्थ

में, **संख्यायाः**–पांच संख्यासूं, **आधिक्यं**–अधिकपनो, **न शङ्कितं**–नहीं शङ्का करनो ।

भाषा-विवरण ।

सिद्धान्तरहस्य के कितने ही टीकाकारनने 'लोकवेद-निरूपिताः' या पदकूं सब दोषन को विशेषण राख कें दोषन की पांच संख्या राखी है, और श्रीहरिरायचरणने 'स्मृताः' पदकूं प्रमाण सूचक राख कें 'लोक वेद निरूपिता' पदसूं लौकिक वैदिक दोषनकूं एक में ही समावेश करके तथा दैशिक कालिक दोषनको एक में ही निरूपण कर दोषन की संख्या पांच कही है। वेद निषिद्ध कर्म करवेसूं तथा वेदोक्त कर्म न करवेसूं जो दोष होंय है, वे लोक में अपकीर्ति होयवेसूं लौकिक भी कहे जासकें हैं। ऐसे वैदिक दोषन को लौकिक दोषनमें मेल हो जायवेसूं श्रीमदाचार्य चरणने देशकाल की तरह लौकिक वैदिक दोषनकी भी एकमें ही गणना करदीनी है। और यों करवेंसूं दोषन की गिनती, सहज देशकालोत्थ लोकवेद निरूपित संयोगज और स्पर्शज ऐसें पांच ही रहैं है अधिक नहीं होंय हैं ॥ ७७–७८ ॥

विवृतिः ।

सम्यग् योगो हि संयोगः कामलोभादयश्च सः ॥७९॥
नैरन्तर्येण संवासशयनासनभोजनैः ॥
म्लेच्छशूद्रादिसंयोगस्तज्जाः संयोगजाः स्मृताः ॥८०॥

अन्वयार्थौ ।

सम्यक्–अच्छी तरह, **योगः**–मेल, **संयोगः**–'संयोग' कह्यो जाय है । **सः**–वह संयोग, **कामलोभादयः**–काम लोभ आदि हैं । **च**–और, **नैरन्तर्येण**–अनेककालपर्यन्त, **संवासशयनासनभोजनैः**–रहनो सोनो एकासन, और भोजन आदिके द्वारा, (यः) (जो) **म्लेच्छशूद्रादिसंयोगः**–म्लेच्छ शूद्र आदि के साथ संयोग, **तज्जाः**–(दोषाः) कामलोभादिसूं और म्लेच्छ शूद्रादिके संग रहन सहन आदिसूं पेदा भये जो दोष, (वे) **संयोगजाः** संयोगज दोष, **स्मृताः**–कहे हैं ।

भाषा–विवरण ।

इन्द्रियन को वृत्तिन के द्वारा जो विषयन को स्पर्श होनो यह संयोग कहावे है । काम लोभ क्रोध मद ईर्ष्या इत्यादि सब वृत्तिऐं संयोग हैं । म्लेच्छ शूद्र आदि के संग रहनो सोनो एकासन पै बैठनो और भोजन आदिकरनो यह भी संयोग है । इन संयोगनसूं जो दोष होंय वे **संयोगजदोष** कहे जांय हैं । यहां म्लेच्छ सहवास भोजनादि ये सब ब्रह्मसंबंध भये पहले के लेने, पीछे तो वैदिक आज्ञाको परिपालन होयवेसूं म्लेच्छ स्पर्शभोजनादिको त्यागही करनो ॥७९–८०॥

विवृतिः ।

स्पर्शजाः स्पर्शमात्रेण प्रायश्चित्तं विधीयते ।
यत्र चाण्डालपतितादीनां ते तादृशा मताः ॥८१॥

अन्वयार्थौ ।

यत्र–जिन दोषन में, **चाण्डालपतितादीनां**–चाण्डाल पतित आदिके, **स्पर्शमात्रेण**–केवल स्पर्श करवेसूं भी, **प्रायश्चित्तं**–प्रायश्चित्त, **विधीयते**–कियो जाय है, तादृशा वैसे, **ते**–वे (दोष) **स्पर्शजाः**–स्पर्शज दोष, **मताः**–माने हैं ।

भाषा-विवरण ।

कितने ही दोष ऐसें हैं जहां चण्डाल पतित प्रभृतिन के स्पर्श करवे मात्रसूं शास्त्र में प्रायश्चित्त कह्यो है वैसे दोष यदि बन गये होंय तो वे दोष स्पर्शज दोष कहावें हैं । यहांभी ब्रह्मसंबंध करे पहले की बात लेनी । ८१ ।

विवृतिः ।

एवं पञ्चविधा दोषा विज्ञेया भगवत्परैः ॥
उक्ता अनुक्ताः सर्वेपि चकारेण समुच्चिताः ॥ ८२ ॥
स्वानुभूतेः परप्रोक्तात्प्रतीता अपि सर्वथा ॥
सेवायां बाधकत्वेन न मन्तव्या विशेषतः ॥ ८३ ॥

अन्वयार्थौ ।

एवं–ऐसें, **भगवत्परैः**–भगवदीयनने, **पञ्चविधाः**–पांच प्रकार के, **दोषाः**–दोष, **विज्ञेयाः**–जान लेने । **उक्ताः**–कहे, **अनुक्ताः**–न कहे, **सर्वे अपि**–(बाकी के) सब दोष, **चकारेण**–चकारसूं, **समुच्चिताः**–ले लीने हैं । स्वानुभूतेः–अपने अनुभवसूं, (अथवा) **परप्रोक्तात्**–

दूसरेके बतायवेसूं, **प्रतीताः**—मालुमपडते भी, **सर्वथा** आदि-सब प्रकार के, (दोषाः) (दोष) विशेषतः बहुत कर के, **सेवायां**—सेवामें, **बाधकत्वेन**—बाधकपनेसूं, **न मन्तव्याः**- न मानने चहियें ।

भाषा–विवरण।

पूर्वोक्त ये पांच प्रकारके दोष हैं । सिद्धान्त रहस्य मूलमें चकार है तासूं शास्त्रमें कहे और जो न कहे होंय वे बाकी रहे सब दोष इन्हीमें अर्न्तगत करलिये हैं । ये दोष वैष्णव-नने जानलेने चहियें, अपने अनुभवमें होंय अथवा दूसरेके कहवे सूं मालुम पडे होंय वे सब प्रकारके दोष सेवामें बाधक हैं यह नहीं माननो । जीवमात्रसूं दोष बने हैं ब्रह्म संबंध के प्रथम इनमेंसूं अनेक दोष बने होंय गे । जासूं दोष बने ही नहीं होंय ऐसो निर्दोष तो एक प्रभु है जीव नहीं । ‘विज्ञेया भगवत्परैः’ या कहवेको तात्पर्य येहै के ब्रह्म संबंध भये पीछे वैष्णवने दोषनसूं सर्वथा बचते रहनो । अपनी भरसक दोष न होने चहिये । किन्तु अनवधान प्रमाद अथवा अगत्या यदि दोय बन जांय तो उनके पश्चात्तापसूं अथवा उनसूं अपवित्रता समझकें सेवाको परित्याग नहीं करनो । भगवत्सेवामें बाध करवे को सामर्थ्य दोषनमें नहीं है । भगवत्सेवा और भगवान् सब दोषनके बाधक हैं उनको बाध करवे वारो कोई नहीं है । जैसे कामचार काम भक्ष आदि दोष यज्ञोपवीत संस्कारसूं निवृत्ति हो जाय हैं एसें ही ब्रह्म

संबंधसूं भी सब दोषनकी निवृत्ति होजाय है । निवृत्तिको अर्थ यहां स्वरूप नाश नहीं किन्तु उनके रूपान्तर होयवेसूं गुणको नाश होनो ही उनकी निवृत्ति है । दोषनको प्रकृत गुण है सेवामें बाधक होनो वह यदि कोई तरहसूं दूर हो जाय तो फिर चाहे ये रहैं चाहैं जांय । डोरीको अग्निके साथ सम्बन्ध करायवेसूं भस्मभये पीछे यद्यपि वाके स्वरूप की खबर पडती रहे है, तथापि वह बाध नहीं सके है, एसें ही ब्रह्मसंबधमें दोषनको भी प्रभुसंबंध होयवेसूं उनको रूपान्तर हो जाय है और याहीसूं वे सेवामें बाध नहीं कर सकें हैं । तासूं वैष्णवनने दोषनकूं सेवामें बाधक नहीं मानने चहियें ॥ ८२-८३ ॥

विवृतिः ।

कथंचनेति पदतः सूचितोऽर्थो निरूपितः ॥
तव्यप्रत्यययोगेनाऽमननं सर्वथोच्यते ॥ ८४ ॥
अन्यथा स्यादविश्वासात्समस्तं फलमन्यथा ॥

अन्वयार्थौ ।

'कथंचन' **इति पदतः**-'कथंचन' या पदसूं, **सूचितः** हमने जाकी सूचना करी, **अर्थः**-वह अर्थ, **निरूपितः**- कह्यो है । **तव्यप्रत्यययोगेन**-तव्यप्रत्ययको योग करवेसूं, **सर्वथा**-सब तरहसूं, **अमननं**-नहीं माननो, **उच्यते**- कह्यो है । **अन्यथा**-जो एसें न मानो, (तो) **अविश्वा-**

सात्–अविश्वाससूं, **समस्तं**–सब, **फलं**–फल, **अन्यथा**–उलटो, **स्यात्**–होजाय ।

भाषा–विवरण ।

सिद्धान्तरहस्य मूलमें 'कथंचन' पद है ताको आशय यह है जो वस्त्रमालिन्य निवृत्तिकी तरह यहां दोषनिवृत्ति नहीं होय है किन्तु माटीके बासनकी पकायवेसूं जैसे कृष्णता रूपान्तरकूं प्राप्त होयकें बाध नहीं कर सके है तैसें दोषभी ब्रह्मसम्बन्धसूं रूपान्तरकूं प्राप्त होयवेसूं सर्वथा सेवामें बाधक नहीं होय है । तव्य प्रत्ययभी याहीके लिये राख्यो है के ब्रह्मसंबंध भये पीछे दोषनकूं सेवामें सर्वथा बाधक नहीं समझने । जो अवश्यार्थक तव्यप्रत्यय न देते तो दोष-निवृत्तिमें थोडो अविश्वास रहवेसूं समस्त फल उलटो हो जातो । अर्थात् अविश्वाससूं फल प्राप्तिमें ही गडबड पडजाती ॥ ८४ ॥

विवृतिः । (प्रश्न)

ननु दोषनिवृत्यर्थं प्रायश्चित्तादिकं कथम् ॥ ८५ ॥
अन्यत्र विहितं चात्र तदेव न किमुच्यते ॥
किमर्थं ब्रह्मसंबंधः...........................

अन्वयार्थौ ।

ननु–शंका होयहे के, **दोषनिवृत्त्यर्थं**–दोषनिवृत्तिके

१—कथं शब्दोऽत्राधिकः प्रतिभाति । किं शब्दस्य वर्तमानत्वात् । अथवा कृतमिति पाठान्तरं स्यात् ।

लिये, **अन्यत्र**—अन्यशास्त्रनमें, **प्रायश्चित्तादिकं**—प्रायश्चित्तादि उपाय, **विहितं**—कहे हैं । **कथं**—क्यों फिर, **अत्र च**—यहां भी, **तत् एव**—वोही, **किं न**—क्यों नहीं, **उच्यते** कह्यो जाय है । **ब्रह्मसंबंधः**—ब्रह्मसंबंध, **किमर्थं**—क्यों, (कह्यो जाय है)? ।

भाषा-विवरण ।

यहां यह शंका होय है के सब शास्त्रनमें सब दोषनकी निवृत्तिके लिये अनेक प्रायश्चित्त करवे कहे हैं तुम्हेभी यदि दोष की निवृत्ति अभीष्ट है तो वहां की तरह यहां भी कोई तरहको प्रायश्चित्त करवेको कहो ब्रह्मसंबंध लेवेको क्यों कहो हो ? ।

विवृतिः । (उत्तरम्)

………………इति चेत्तत्र चोच्यते ॥ ८६ ॥
विनातु ब्रह्मसंबंधं प्रायश्चित्तादिभिः पुनः ॥
युगपत्सर्वदोषाणां न निवृत्तिर्भवेदिति ॥ ८७ ॥

अन्वयार्थौ ।

इति चेत्—यह प्रश्न जो होय, **तत्र च इति उच्यते**—वाके उत्तरमें, ये कहें है, (के) **ब्रह्मसंबंधं**—ब्रह्मसंबंधके, **विना तु**—बिना तो, **पुनः**—और, **प्रायश्चित्तादिभिः**—प्रायश्चित्तादि उपायनसूं, **युगपत्**—एकसाथ, **सर्वदोषाणां**—सब दोषनकी, **निवृत्तिः**—निवृत्ति, **न भवेत्**—नहीं होय ।

भाषा-विवरण ।

दोष निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्तादिकूं छोडकें ब्रह्मसंबंधको उपदेश क्यों कियो या प्रश्नको इतनोही उत्तर है के, प्रायश्चित्तादि उपायनसूं एकसाथ सब दोषनकी निवृत्ति नहीं होयहै, और ब्रह्मसंबंधसूं एककालमें सब दोषनकी निवृत्ति होजाय है तासूं दोषनिवृत्तिके लिये ब्रह्मसंबंधको ही उपदेश कियो है ॥ ८६–८७ ॥

विवृतिः ।

ब्रह्मसंबंधकरणं सर्वदोषनिवर्तकम् ॥
तदभावे कथं सद्यः सेवायामधिकारिता ॥ ८८ ॥
अत एवाग्रिमे पद्ये प्रोक्तं सर्वपदं पुनः ॥
'अन्यथा सर्वदोषाणा'मित्यत्रोक्तार्थसूचनम् ॥ ८९ ॥

अन्वयार्थौ ।

ब्रह्मसंबंधकरणं–ब्रह्मको संबंध करनो, **सर्वदोषनिवर्तकं**–सर्वदोषनकूं निवृत्तकरवे वारो है । **तदभावे**–ब्रह्मसंबंध न होयतो, **सद्यः**–एकदम जल्दी, **सेवायां**–प्रभुसेवामें, **अधिकारिता**–अधिकार, **कथं** (भवति) कैसें होय । **अत एव**–याहीसूं, अग्रिमे पद्ये आगेंके मूलश्लोकमें, **पुनः**–द्वितीयवार, **सर्वपदं**–'सर्व' शब्द, **प्रोक्तं**–कह्यो है । 'अन्यथा सर्वदोषाणां' **इत्यत्र**–'अन्यथा सर्वदोषाणां' या श्लोकार्धमें **उक्तार्थ सूचनं** (अस्ति) एककालमेंही सबदोषनकी निवृत्ति होजाय है या बातकी सूचना करी है ।

भाषा-विवरण ।

जैसे अग्नि निर्दोष और सर्व समहै तासूं सबकी एकसाथ और सद्यः दोषकी निवृत्ति करानी होय तो अग्निको संबंध करायो जायहै तैसेंही सब को समानरीतिसूं एकसाथ सद्यः दोष-निवृत्तिके लिये ब्रह्मसंबंध करायो जायहै । यदि ब्रह्मसंबंध न करायो जाय तो सद्यः सेवाकरवे को अधिकार कैसे प्राप्त होय । याहीसूं 'अन्यथा सर्वदोषाणां' या आगेके पद्यमें सर्व शब्दको द्वितीयवार प्रयोग करके यह बात सूचित करी है ॥ ८८-८९ ॥

मूलम् ।

अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथंचन ॥
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत् ॥ ४ ॥

मूलार्थः

यदि ब्रह्मसंबंध न कियो जाय तो प्रायश्चित्तादिके द्वारा सब दोषनकी निवृत्ति एकदम कभी नहीं होय ! तासूं असमर्पितवस्तुनको ग्रहण करनो एकदम छोडदेनो चहिये ॥४॥

विवृतिः ।

एवं हि ब्रह्मसंबंधः संस्कारोऽत्र निरूपितः ॥
तदुत्तरं तस्य सर्वसमर्पणमिहोच्यते ॥ ९० ॥

अन्वयार्थौ ।

अत्र हि–या ग्रन्थमें, **एवं**–या प्रकारसूं, **संस्कारः**–संस्कार, **निरूपितः**–कह्यो । **इह**–यहां आगे, **तस्य**–जीवको, **सर्वसमर्पणं**–सर्वसमर्पण, **उच्यते**–कह्यो जाय है ।

भाषा-विवरण ।

वेदाध्ययन और वैदिक कर्मादि साधनाचरणके लिये जैसे उपनयन संस्कार की आवश्यकता है तैसे भगवत्सेवा कथा सत्संगादिके लिये ब्रह्मसंबंध की बडी आवश्यकता है। उपवीत संस्कारसूं दोष निवृत्ति होय है । ब्रह्मसंबंधसूं भी दोषकी निवृत्ति होय है । उपनयन संस्कारके अनन्तर जैसे वैदिक कर्मादि साधनको निरूपण है ऐसें यहां भी आगे संस्कारोत्तर कर्तव्य, जीवको प्रभुमें सर्वसमर्पण कह्यो जाय है ॥ ९० ॥

विवृतिः ।

यस्मात्कृतो हि सम्बन्धो विनियोगाय सर्वथा ॥
स्वासम्बन्धि यतः कृष्णो न गृह्णातीति निश्चयः ॥९१॥

अन्वयार्थौ ।

यस्मात्—कारण ये है के, **सर्वथा**—सब तरह सूं, **विनियोगाय**—उपयोग में लायवेकेलिये, **सम्बन्धः**—ब्रह्मसंबंध, **कृतः हि**—कर्यो है यह निश्चय है । **यतः**—क्यों के, कृष्णः श्रीकृष्ण, **स्वासम्बन्धि**—अपनो संबंध न कराये पदार्थनकूं, **न गृह्णाति**—नहीं ग्रहण करे है, **इति निश्चयः**—यह निश्चय है ।

भाषा-विवरण ।

अपने सर्वस्वको प्रभुमें विनियोग होय । प्रभु अपने सर्वस्व को ग्रहण करें याके लिये ही ब्रह्मसंबंध ग्रहण कियो

जाय है । ब्रह्मसंबंध लिये बिना आत्मा आत्मीय पदार्थनको प्रभुके साथ सम्बन्ध नहीं होय है । और जाको प्रभुके साथ संबंध नहीं भयो है वा पदार्थको प्रभु स्वीकार नहीं करें है यह निश्चय है ॥ ९१ ॥

विवृतिः ।

एतदेवोक्तमाचार्यैर्वेणुगीतनिरूपणे ॥
स्वभोगानन्तरं भोग्यो भगवान्भवतीति हि ॥ ९२ ॥

अन्वयार्थौ ।

वेणुगीतनिरूपणे–वेणुगीत-श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी में, **आचार्यैः**–श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणने, **एतत् एव**–ये बात ही, **उक्तं**–कही है के, **स्वभोगानन्तरं**–जीव के आत्मा और आत्मीय पदार्थनके भोग करे पीछे ही, **भगवान्**–श्रीकृष्ण, **भोग्यः**–**भवति**–भोगवे लायक होय है ॥

भाषा–विवरण ।

भगवान् जीवको भोग करें हैं तासूं जीवभोग्य है और भगवान् भोक्ता हैं । और जीवभी भगवान् को भोग करे है तासूं जीवभोक्ता और भगवान् भोग्य भी हैं । भेद इतने है कि भगवान् जीवको भोग सर्व अवस्थामें करसकें हैं । पर जीव पूर्ण फलावस्थामें ही प्रभुको भोगकरे है । और प्रभुके दान करवेसूं वो भोग, जीवकूं मिले है । या भोगको वर्णन '**सोऽश्नुते सर्वान्कामान्**' या श्रुतिमें कियो है । अवतार दशामें जब भक्तको प्रभुभोग कर चुकें हैं तब वाकूं

अपने भोगको दान करें है। वा समय वह भक्त प्रभुको भोग करे है। अनवतार दशामें भी जीव जब अपने आत्मा और आत्मीय पदार्थनको प्रभुके अर्पण करे है वा समय प्रभु याको भोग करें हैं। और भक्तके भोग करे पीछे अन्तः किंवा बाहर प्रभु प्रगट होयकें अपने भोगको दान करें हैं। यह फल अवस्था है। लौकिक भ्रष्ट भोग यहां नही लेनो। अनवतार दशामें सर्वतः जीवको भगवत्परिचर्यामें आनो ही जीवको प्रभुने भोग करनो है ॥ ९२ ॥

विवृतिः ।

तत्रापिब्रह्मसम्बन्धो वेणुना शब्दरूपिणा ॥
ब्रह्मणा, येन संसिद्धं देहादिविनियोजनम् ॥ ९३ ॥

अन्वयार्थौ ।

तत्र अपि वहां भी, **शब्दरूपिणा**–शब्दस्वरूप, **ब्रह्मणा**–अक्षरब्रह्म, **वेणुना**–(सह) वेणुके संग, **ब्रह्मसंबंधः**–(जातः) ब्रह्मसंबंध भयो है। **येन**–जासूं, **देहादिविनियोजनं**–देहादिपदार्थनको विनियोग, **संसिद्धं**–सिद्ध भयो। अन्यथा नहि होतो।

भाषा–विवरण ।

दशमस्कन्ध के वेणुगीत प्रकरणमें गोपीजननको प्रथम अक्षर ब्रह्मके संग संबंध भयो है। अक्षरब्रह्म दो प्रकार को है। एक स्वरूपात्मक और दूसरो नामात्मक। वेद नामात्मक

१–अक्षरसम्बबोधको हेतुः ।

अक्षरब्रह्म है। और 'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा' श्रुतिमें कह्यो अक्षरब्रह्म है सो स्वरूपात्मक ब्रह्म है। वेद समग्र भगवन्नामात्मक है, यह छान्दोग्यमें स्पष्ट है। वेणु भी शब्दब्रह्मात्मक अक्षरब्रह्म है। फलात्मक संबंध के पूर्व ब्रह्मसंबंध की आवश्यकता है तासूं प्रभुने श्रीगोपीजननकूं भी वेणुनाद सुनाय कें प्रथम अक्षरब्रह्म को संबंध करायो और पीछे तत्समर्पित आत्मा आत्मीयआदिपदार्थनको ग्रहण कियो ॥ ९३ ॥

विवृतिः ।

तस्मात्संबंधसहितो वर्जयेदसमर्पितम् ॥
समर्पणं तु संसिद्ध्येत्सम्बन्धादेव सर्वथा ॥ ९४ ॥

तस्मात्–तासूं, **सम्बन्धसहितः**–ब्रह्मसम्बन्ध लियो वैष्णव, **असमर्पित**–असमर्पित पदार्थकूं, **वर्जयेत्**–न ग्रहण करै। **तु**–कारण के, **सम्बन्धात् एव**–प्रभुके साथ सम्बन्ध करायवेसूं ही, **समर्पणं**–समर्पण, **सर्वथा**–सबतरहसूं, **संसिद्ध्येत्**–फलित होय है।

भाषा-विवरण ।

तासूं जाने ब्रह्म संबंध ग्रहण कियो है वह प्रभुके असमर्पित वस्तुन को परित्याग करै। कारण कि स्वसम्बंधिको ही प्रभु समर्पित ग्रहण करें हैं ॥ ९४ ॥

विवृतिः ।

स्वसंबंधि यतः सर्वं गृह्णात्येवेति निश्चयः ॥
समर्प्यं भक्त्युपहृतमतस्तु हरिणोदितम् ॥ ९५ ॥

गीतायां भक्तिमार्गीयप्रभुणातिदयालुना ॥

अन्वयार्थौ ।

यतः–कारण के, **स्वसम्बन्धि**–अपनो संबंध कराये, **सर्वं**–सब पदार्थन को, **गृह्णाति एव**–ग्रहण करेंहीं हैं, इति **निश्चयः**–यह निश्चय है । **अतःतु**–याहीसूं, **समर्प्य**–मेरे अर्पण करने । **भक्तिमार्गीय प्रभुणा**–भक्तिमार्गीय स्वामी, **अतिदयालुना**–अतिदयालु, **हरिणा**–श्रीकृष्णने, **गीतायां**–गीतामें, **उदितं**–कह्यो है (यत्) (जो) **भक्त्युपहृतं**–भक्ति सूं लाये पदार्थ, में ग्रहण करूं हूं ।

भाषा–विवरण ।

जिन पदार्थनको प्रभुके साथ सम्बन्ध होय है प्रभु उनको ही ग्रहण करें हैं । आपसु सम्बन्ध न रखवे वारेनको ग्रहण नहीं करें हैं यह निश्चय है । तासूंप्रभूकूं सर्वसमर्पण करनो भगवद्गीतामें दयालु प्रभुने अनेकत्र आज्ञा करी है कै 'जो कुछ करनो जो कुछ भोगनो वह सब मेरे अर्पण करनो' 'जो भक्तिसूं मेरे अर्पण करें है में उनके अर्पितकूं ग्रहण करूं हूं' ।

विवृतिः ।

वस्तूनामिति यत्प्रोक्तं बहुत्वं तस्य चाशयः ॥ ९६ ॥
सर्वांशेनैव तत्त्यागो नैकांशेनेति बुद्ध्यताम् ॥

अन्वयार्थौ ।

यत्–जो, **'वस्तूनां' इति**–'वस्तूनां' या पदमें,

बहुत्वं–बहु वचन, **प्रोक्त**–कह्यो, **तस्य च**–वाको भी, **आशयः**–यह तात्पर्य है, (जो) **सर्वांशेन एव**–सर्वांशसूं ही, **तत्त्यागः**–असमर्पित पदार्थको त्याग है, **एकांशेन न**–एकांशसूं नहि, **इति बुद्ध्यताम्**–यह जानो ।

भाषा–विवरण ।

मूलमें 'असमर्पित वस्तूनां' यहां जो 'वस्तूनां' पदमें बहुवचन कह्यो ताको इतनोही तात्पर्य है जो जिन जिन असमर्पित पदार्थनको त्याग करनो उन उनको सबके सबको त्याग करनो । एकांशको प्रभु अर्पण करनो और बाकी करे असमर्पित अंशकूं अन्य कार्य में लेनो सो नहि, किन्तु सब को सब प्रभुके ही अर्पण करनो । असमर्पित वस्तु-को तो सर्वथा त्यागही करनो ॥

विवृतिः ।

यथा गायत्रोपदेशः संस्कारोत्तरमुच्यते ॥ १७ ॥
श्रुतिस्मृत्युदिताचारस्तदभावे फलं न हि ॥

अन्वयार्थौ ।

यथा–जैसे, **संस्कारोत्तरं**–उपवीत संस्कारके उत्तर-क्षणमें ही, **गायत्रोपदेशः**–गायत्री को उपदेश, **उच्यते**–करवेमें आवे है, **तदभावे**–यज्ञोपवीत और गायत्र्युपदेशके बिना, **फलं न** (भवति) फल नहि होय । (तथा) (तैसें) 'आचरेत्' इत्यनेन 'आचरेत्' या पदसूं, **श्रुतिस्मृ-**

१–गायत्र्याः अयं गायत्रः गायत्रश्चासौ उपदेशः गायत्रोपदेशः ।

त्युदिताचारः—श्रुतिस्मृति आदिशास्त्रमें कहे आचारको पालनकरनो (उच्यते) (कह्यो है)।

भाषा–विवरण ।

यज्ञोपवीत संस्कार को प्रयोजन वेदोक्त यज्ञादिकर्मकरनो है किन्तु यदि यज्ञोपवीत न होय और गायत्री आदिवेद न पढायो जाय तो श्रुतिस्मृत्युक्त कर्म नहीं होय सकें तासूं उपवीत होयवे के अनन्तर ही गायत्री प्रभृति वेदको अध्ययन करायो जाय है । ऐसे हीं '**आचरेत्**' या मूल के पदसूं मालुम होय है के यहां भी संस्कारोत्तर वेदशास्त्रोक्त आचारन को पालन करनो चहिये ।

विवृतिः ।

आचरेदित्यनेनाऽत्र ब्रह्मसंबंधतः परम् ॥ ९८ ॥
समर्पणं तथाचारो ह्यसमर्पितवर्जनम् ॥
तदभावेऽङ्गहीना तु सेवा नैव फलेदिह ॥ ९९ ॥

अन्वयार्थौ ।

आचरेत्—**अनेन**—मूलके 'आचरेत्' या पदसूं मालुम होय है के **अत्र**—आचार्यप्रकटित भक्तिमार्गमें, **ब्रह्मसम्बन्धतः**—ब्रह्मसम्बन्धसूं, **परं**—पीछे, **समर्पणं**—आत्मा आत्मीय पदार्थ को अर्पण, **तथाचारः**—वेदशास्त्रोक्त आचार को पालन (और) **असमर्पितवर्जनं**—असमर्पित को त्याग, (कर्तव्यम्) (करनो चहिये) **हि**—यह निश्चय है । **तदभावे तु**—इन तीनोन के अभावमें तो, **इह**—या भक्तिमार्गमें

अङ्गहीना–अङ्गहीन, **सेवा**–सेवा, **न एव**–नहीं ही, **फलेत्**–फलदे है । आचरेदित्यनेन या पदकी आवृत्ति कर के दोनो जगह लगानो ।

भाषा-विवरण।

या श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकटित भक्तिमार्गमें ब्रह्मसंबंध लिये पीछे तीन बातें अवश्य करनी चहियें। आत्मा और आत्मासूं सम्बन्ध राखवे वारे पदार्थन को अर्पण, वेदशास्त्रोक्त कर्माऽऽचारन को पालन, और असमर्पित को परित्याग। ये तीनो पुष्टिमार्ग के अङ्ग हैं। यदि ये तीनो न करै और सेवा करे तो वह सेवा अङ्गहीन है। और अङ्गहीन सेवाको कछुफल नहीं होय है।

विवृतिः।

ननु सर्वं समर्प्यं चेद्वैदिकं लौकिकं तथा ॥
न कुर्यात्कृष्णकार्याय सम्बन्धो विहितो यतः ॥१००॥
न चाऽन्यविनियोगोपि ह्युचितश्च निवेदिनाम् ॥

अन्वयार्थौ।

शंका

ननु–यहां यह शंका होय है के, **चेत्**–जो, **सर्वं**–सब ही, **समर्प्यं**–प्रभुकूं अर्पण करवेको होय, (तर्हि) (तो) **वैदिकं**–संध्याश्राद्धादि, **तथा**–और, **लौकिकं**–विवाहादि, **न कुर्यात्**–नहीं करनो चहिये, **यतः**–कारण के, **कृष्णकार्याय**–केवल प्रभुसेवाके लिये, **सम्बन्धः**–ब्रह्मसम्बन्ध,

विहितः–ग्रहणकियो है । **च**–और, **निवेदिनां**–भगवदीयनको, **अन्यविनियोगः अपि**–सन्ध्याश्राद्धादि वैदिककर्ममें विनियोग होनो भी,**न हि**–नहीं, **उचितः**–योग्य है ।

भाषा–विवरण ।

यहां इतनी शंका होय है के जब सर्वपदार्थनको प्रभुकूं ही अर्पण करवेकी आज्ञा है तो लाकिक वैदिक कर्म क्यों करने ? । ब्रह्मसम्बन्ध तो केवल श्रीकृष्णसेवाके लिये ही ग्रहण कियो है तौ फिर अग्निहोत्र संध्या श्राद्धादि तथा नियमतः विवाहादि लौकिक कर्म क्यों करने? नहि करने चहियें । दूसरें आत्मा और आत्मीयको प्रभुमें विनियोग होय याके लिये उनको निवेदन कियो है । अब जो वा आत्मासूं और उन आत्मीय पदार्थनसूं लौकिक वैदिक कर्म करवे में आवेंगे तो भगवदीयनको अन्यमें विनियोग होयगो । और भगवान् के लिये जो वस्तु है वाको अन्यविनियोग होनो यह तो अति अनुचित है, तासूं ब्रह्मसंबंध लिये पीछे अग्निहोत्र श्राद्धादि वैदिक कर्मनको और नियमित विवाहादि लौकिक कर्मनको त्याग कर देनो चहिये ॥ १०० ॥

विवृतिः ।

समाधान ।

इति चेदुच्यते सर्वं कुर्यादेवं यथोदितम् ॥ १०१ ॥
मर्यादामध्यपातेन पुष्टिमार्गनिरूपणात् ॥

१–अत्र पुष्टिमार्गीयविवाहक्रद्भिर्धर्मत्यागर्न्याकुलैरवश्यंदष्टिर्दातव्या ।

इति चेत्–ऐसी जो शंका करते हो ओ तो, **उच्यते**–ताको समाधान करें हैं, **सर्वं**–लौकिक वैदिक सब कर्म, **यथोदितं**–जैसें शास्त्रमें कहै तदनुसार, **कुर्यात् एव**–करनेही चहियें (कारणके) **मर्यादामध्यपातेन**–वेदोक्तमर्यादाकूं मध्यमें राखकें, **पुष्टिमार्गनिरूपणात्**–पुष्टिमार्गको निरूपण कियो है तासूं ।

भाषा-विवरण ।

ब्रह्मसंबंध लिये पीछे लौकिक वैदिक सब कर्म को त्याग करनो यह शंका करी सो सर्वथा अनुचित है । ब्रह्मसंबंध भये पीछे तो सर्व वैदिक लौकिक कर्म करने ही चहियें, क्यों कि श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकटित यह पुष्टिमार्ग मर्यादामध्य है । याके आदि और अन्त में पुष्टि है और मध्य में वेदोक्त मर्यादा है तासूं वैदिक लौकिकको त्याग या मार्गमें बनही नहीं सके है । प्रथम पुष्टि, ब्रह्मसंबंध के समयमें, और द्वितीय पुष्टि, फलके समय में किन्तु मध्यमें वेदोक्तमर्यादासहितभक्तिमार्गमें स्थिति यह पुष्टिमार्गको स्वरूप है ॥१०१॥

विवृतिः ।

निवेदो वर्तते तेषां पदार्थानां पुराकृतः ॥ १०२ ॥
तेनैव सकलं कुर्यात्समर्प्यैव हरौ परे ॥
देहनिर्वाहवत्कृष्णप्रसादेनेति निश्चयः ॥ १०३ ॥

अन्वयार्थौ ।

तेषां पदार्थानां–उन पदार्थनको, **पुराकृतः**–पहलें

कियो, **निवेदः**—निवेदन, **वर्तते**—विद्यमान है । **तेन एव**—वा निवेदित पदार्थ सूं ही, **परे हरौ**—सर्व श्रेष्ठ श्रीकृष्ण-के चरणनमें, **समर्प्य**—समर्पण करकें, **कृष्णप्रसादेन**—भगवत्प्रसादसूं, **देहनिर्वाहवत्**—देह निर्वाहकी तरह, **सर्वं**—लौकिक वैदिक सब, **कुर्यात् एव**—करै ही ।

भाषा-विवरण ।

जिन पदार्थनसूं लौकिक वैदिक कार्य करवे में आवेंगे उन पदार्थनको ब्रह्मसंबंधके समय निवेदन होय चुक्यो है तासूं जैसें भगवत्प्रसादसूं देह को निर्वाह करवे में आवै है, वाही रीतिसूं उन निवेदित पदार्थनसूं लौकिक विवाहादि और वैदिक श्राद्ध यज्ञादिक, सर्वोत्तम श्रीहरि के चरणन-में अर्पण करके जरूर करै । १०२–१०३ ।

स्वयं कुर्यान्न विश्वासं पुत्रादीनामपि क्वचित् ॥
एवं प्रकारिकैवैषा स्थितिः पुष्टिफलावधि ॥ १०४ ॥
मर्यादापीयमेवेह स्थित्यर्थमवगम्यताम् ॥

अन्वयार्थौ ।

स्वयं—अपने आप, (सर्वं) **कुर्यात्**—सब कार्य करै, **पुत्रादीनां अपि**—स्त्री पुत्र प्रभृतिनको भी, **विश्वासं**—विश्वास, **क्वचित्**—कभी, **न**—कुर्यात् न करै । **एवं प्रका-रिका**—या प्रकार की, **एषा स्थितिः**—यह मर्यादा, **पुष्टि-फलावधि**—(यथास्यात्तथा) (अस्ति) पुष्टिफल पर्यन्त है । **स्थित्यर्थं**—देहादि निर्वाह के लिये, **मर्यादा अपि**—

मर्यादा भी, **इयं एव**–येही है, (इति) **अवगम्यताम्**–यह निश्चय जानो ।

ब्रह्मसंबंध भये पीछे लौकिक धर्म, वैदिक धर्म, और भगवत्परिचर्या यह तीन कर्तव्य हैं । यह सब कर्तव्य हैं किन्तु अनिवेदित पदार्थनसूं नहीं, और फल प्राप्ति के लिये साधन रूपसूं नहिं । किन्तु भगवदाज्ञा समझकें अपाषण्डी बनवे के लिये, प्रभु प्रसाद के लिये, और पुष्टिफल की योग्यता आयवेके लिये करै । और सेवा आदि सब अपने आप करै । पुत्रादिकनको विश्वास न करै । उनके द्वारा न करावै । और पुष्टिफल अर्थात् प्रभुके प्रकट होयवे पर्यन्त यह करै जाय यह या मार्ग की रीति है । जैसें यह मार्ग की रीति है वैसें ही ये ही देहादि निर्वाह की निर्दोष रीति भी है ॥ १०४ ॥

विवृतिः ।

(प्रश्नः)

नन्वेतदुचितं नैव यत्समर्पितयोजनम् ॥ १०५ ॥
लौकिके वैदिके नीचप्रेतपित्रादियोगिनि ॥
अतोऽसमर्पितेनैव तत्कार्य.....................

ननु–यहां यह प्रश्न करें हैं के, ' **यत्**–जो, **नीचप्रेतपित्रादियोगिनि**–नीचप्रेत और पितृ आदिसूं संबंध राखवेवारे, **लौकिके वैदिके**–लौकिक वैदिक कार्यमें, **समर्पि-**

तयोजनं–प्रभुसमर्पित पदार्थनको विनियोग करनो, **एतत्**–यह, **न एव**–नहीं ही, **उचितं**–उचित है। **अतः**–तासूं, **तत्**–प्रभुके सिवाय सब अन्यकार्य, **असमर्पितेन एव**–असमर्पितपदार्थनसूं ही, **कार्यं**–करने चहियें।

भाषा-विवरण।

यहां एक यह प्रश्न होय है के 'मरण के अनन्तर दशाह एकादशाह पर्यन्त को संस्थितिकर्म नीचप्रेतकर्म, और द्वादशाहानन्तरको पितृकर्म यह सब प्रभुकरतें हलके हैं। इत्यादि लौकिक वैदिक कार्यनमें प्रभुसमर्पित पदार्थनको विनियोग करनो सर्वथा अनुचित है। तासूं लौकिक वैदिक सब कार्य असमर्पित पदार्थनसूं ही क्यों न करने चहियें ?॥ १०५॥

विवृतिः।

(उत्तरम्)

................इति चेन्न हि ॥ १०६ ॥

युज्यते शेषभावाप्त्या निखिलं तज्जुगुप्सितम् ॥
अर्धभुक्तं देवदेवोपयोगाय भवेन्न तु ॥ १०७ ॥

अन्वयार्थौ।

इति चेत् न–यह प्रश्न करनो ठीक नहीं है, **हि**–क्यों के, **शेषभावाप्त्या**–सब दैवपितृ आदि देवनकूं शेषभाव है तासूं, **तत्**–भगवत्प्रसादीसूं सबकार्य करनो, **युज्यते**–ठीक है। (और) **निखिलं**–अनप्रसादीसूं सब करनो, **जुगुप्सितं**–निन्दित है। **तु**–और, **अर्धभुक्तं**–आधो

उपयोगमें लायो पदार्थ, **देवदेवोपयोगाय**–देवदेव श्रीकृष्ण के उपयोग के योग्य, **न भवेत्**–नहीं रहे है ।

भाषा–विवरण ।

अनप्रसादी पदार्थनसूं लौकिक वैदिक कार्य नहीं करने किन्तु भगवन्निवेदित पदार्थन सूं ही सब कार्य करने । और यह ठीक भी है । क्यों के सम्पूर्ण देव पितृ आदि भगवान् के अङ्ग हैं अङ्गनके लिये तो प्रभुनिवेदित पदार्थन को उपयोग में लानो ही उचित है । प्रभु के अनिवेदित पदार्थ अन्यमें विनियोग करनो दोषावह है । दूसरें जिन पदार्थनको लौकिक वैदिक कर्मनमें उपयोग कियो वे सब अर्ध भुक्त हो जांय हैं । और अर्ध भुक्त पदार्थनको उपयोग श्रीकृष्ण सेवामें नहीं होय सके है । क्यों के श्रीकृष्ण देवनकेभी देव हैं ॥ १–६–१–७ ॥

विवृतिः ।

न चोचितं सेवकानां स्वामिन्येवं विधार्पणम् ॥

अन्वयार्थौ ।

च–और, **स्वामिनि**–अपने प्रभुकूं, **एवंविधार्पणं**–अन्यमें उपयोग किये को समर्पण करनो, **सेवकानां**–वैष्णवनकूं, **उचितं न**–उचित नहीं है ।

भाषा–विवरण ।

और प्रभुकूं अन्य भुक्त पदार्थनको निवेदन करनो वैष्णवनके लायकभी नहीं है ।

सिद्धान्तरहस्यम् ।

न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तसमर्पणम् ।
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम् ॥

अन्वयार्थौ ।

देवदेवस्य–देवदेवकूं, **सामिभुक्तसमर्पणम्**–आधो उपयोग में लाये पदार्थ को समर्पण, **न मतम्**–नहीं स्वीकार है । **तस्मात्**–तासूं, **आदौ**–पहले **सर्वकार्ये**–विहित सब कामनमें, **सर्ववस्तुसमर्पणम्**–सबकी सब चीजनको समर्पण करनो चहिये ।

भाषा-विवरण ।

देव देव श्रीकृष्णकूं थोडो भी अपने काम में लायो पदार्थ निवेदन करनो यह स्वीकार नहीं है तासूं सर्वसूं पहले सर्व कार्यन में सबके सब पदार्थन को प्रभुकूं अर्पण करनो ॥ ५$\frac{1}{2}$ ॥

विवृतिः ।

एवं समर्पणासिद्धौ संबंधो विफलो भवेत् ॥ १०८ ॥
अतो निषिद्धं कृष्णस्य सामिभुक्तसमर्पणम् ॥

अन्वयार्थौ ।

एवं–या प्रकार, **समर्पणासिद्धौ**–समर्पणकी असिद्धि होयवेसूं, **सम्बन्धः**–ब्रह्मसंबंध, **विफलः**–निष्फल, **भवेत्**–हो जाय । **अतः**–तासूं, **कृष्णस्य**–प्रभुकूं, **सामि भुक्तसमर्पणं**–अन्य उपयोगमें लियो समर्पण, **निषिद्धं**–शास्त्रमें मने है ।

भाषा-विवरण।

थोडे पदार्थनको अन्यमें उपयोग करनो और थोडेको प्रभुमें उपयोग करनो यह समर्पण नहीं कहावे है। सम्पूर्ण पदार्थको समर्पणही समर्पण कहावे है। और जब समर्पण न होय सकै तो लियो भयो संबंध भी निष्फल है। तासूं आधे भोगे भये पदार्थनको श्रीकृष्णकूं समर्पण करनो लोक और शास्त्र दृष्टिसूं निषिद्ध है ॥ १०८ ॥

विवृतिः।

ननु कृत्वाऽखिलं कर्म लौकिकं वैदिकं तथा ॥ १०९ ॥
समर्पणैकबुद्ध्या वा पश्चात्कृष्णे समर्पयेत् ॥
तदा न प्राप्यते दोषः कश्चित्तादृक्समर्पणे ॥ ११० ॥

अन्वयार्थौ।

ननु—यहां यह प्रश्न होय है के, **लौकिकं**—लौकिक, **तथा**—और, **वैदिकं**—वैदिक, **अखिलं**—सब, **कर्म**—काम, **कृत्वा**—करकें, **वा**—अथ वा, **समर्पणैकबुद्ध्या**(कृत्वा)—यह पदार्थमें प्रभुके अर्पण करूंगो या बुद्धिसूं करकें, **पश्चात्**—पीछें, **कृष्णे**—कृष्णके चरणमें, **समर्पयेत्**—**तदा**—तब, **तादृक्समर्पणे**—वैसे समर्पणमें, **कश्चित्**—कोई, **दोषः**—दोष, **न प्राप्यते**—नहीं प्राप्त होय है।

भाषा-विवरण।

यहां यह प्रश्न है के 'में ये सब प्रभुके अर्पण करूंगो' ऐसी बुद्धि राखकें अथवा वैसें ही लौकिक वैदिक सब कर्म

करकें पीछें श्रीकृष्णके अर्पण करै । या तरह करवेमें देवान्तरको दोष भी नहीं होय और समर्पण भी सिद्ध होजाय है ॥ १०९ ॥ ११० ॥

विवृतिः ।

इति चेद्देवदेवो हि यस्मात्कृष्णो न केवलः ॥
अतः सेवकशेषो हि सामिभुक्तं हरेः स्मृतम् ॥१११॥

कृष्णार्पणैकमत्या वा कृत्वा कृष्णसमर्पणम् ॥
तत्रापि स्यादन्यशेषो मतिमात्रेण चार्पणात् ॥११२॥

अन्वयार्थौ ।

इति चेत्—एसो प्रश्न करते होओ (तो वहभी ठीक नहीं है), **यस्मात्**—कारण के, **कृष्णः**—श्रीकृष्ण, **देवदेवः**—(अस्ति) देवनके भी देव हैं, **केवलः न**—अकेले नहीं है, **हि**—यह निश्चय है। **अतः**—तासूं, **सेवकशेषः**—भगवत्सेवक शेष भोगादि, **हरेः**—श्रीकृष्णके लिये, **सामिभुक्तं**—अर्ध-भुक्त, **हि**—ही, **स्मृतम्**—मान्यो जाय है, **वा**—अथवा, (जो) **कृष्णार्पणैकमत्या**—श्रीकृष्णकू ही यह वस्तु समर्पण करूंगो ऐसी बुद्धिसूं, **कृष्णसमर्पणं**—कृत्वा बुद्धिमात्रसूं कृष्णकूं समर्पण करके भी (जो लौकिक वैदिक कार्य करे होंय तो) **तत्रापि**—वहां भी, **मतिमात्रेण अर्पणात्**—श्रीकृष्णकूं तो बुद्धिमात्रसूं अर्पण कियो तासूं, **च**—और (अन्यकार्यमें साक्षात् विनियोग कियो तासूं) (वह समर्पण) **अन्य-**

शेषः–अन्यदेव भुक्त तथा अन्यसमर्पित, **स्यात् एव**–कह्यो ही जायगो ॥ १११–११२ ॥

भाषा-विवरण ।

यह जो तुम्हारी व्यवस्था है सो यद्यपि आपाततः देखवे में ठीकसी दीखे है, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसूं यामें भी दोष आवे है । प्रथम पक्षमें तो दोष स्पष्टही है । क्योंके कृष्ण समर्पण करे पहले लौकिक वैदिक कर्म करै, और पीछे प्रभु समर्पण करे, या पक्षमें तो स्पष्ट ही सेवक शेष समर्पण रूप दोष है । दूसरे पक्षमें स्थूल दृष्टिसूं कछु समाधानसो होय है किन्तु या दूसरे पक्षमें भी सूक्ष्म दृष्ट्या दोष है । वो यह, के श्रीकृष्ण देवदेव हैं, देवतान के देवता है, देवलोक प्रभुके परिवार हैं और प्रभु उनके स्वामी हैं । प्रभुके अङ्ग देवता हैं और प्रभु स्वयं अङ्गी हैं । ऐसी अवस्थामें यदि तुमने बुद्धिमात्रसूं विचार भी लियो के 'में ये पदार्थ श्रीकृष्णके अर्पण करूं हूं' और पीछे लौकिक वैदिक कार्य लिये और तापीछे फिर प्रभुके साक्षात् समर्पण किये । या समर्पणमें भी अन्यशेष समर्पण रूप दोष आवे है क्योंकि भगवान्के संग अन्यदेवन के भी समर्पण हो चुक्यो । जो वस्तु सामान्य-रीतिसूं अर्थात् कृष्णानन्य बुद्धि विना समर्पण कियो जाय है वहां अन्य देव भी उनके संगमें ही आय जांय है और ऐसें वह अर्पण अन्यदेवार्पण भी कह्यो जाय सके ।

दूसरी बात और है–'में ये पदार्थ कृष्ण के अर्पण करूंगो' या अर्पणमें बुद्धिमात्रसूं अर्पण है साक्षात् नहीं। और लौकिक वैदिक कर्ममें अन्यदेवादि समर्पण साक्षात् है और ता पीछे यदि तुमने श्रीकृष्ण के साक्षात् समर्पण भी कियो तथापि वह अन्यशेष समर्पण ही कह्यो जायगो । क्यों कि पूर्वमें बुद्धिमात्रसूं (साक्षात् नहीं) कृष्णसमर्पण कियो है और लौकिक वैदिक कर्ममें साक्षात् अन्यसमर्पण है । और तदनन्तर श्रीकृष्णके साक्षात्समर्पण है तासूं ॥१११–११२॥

विवृतिः ।

सर्वथा नार्पितं कृष्णे तन्न गृह्णाति केशवः ।
यतः सम्बन्धवैयर्थ्यमत आदौ समर्पणम् ॥ ११३ ॥
तत्रापि सर्ववस्तूनां सर्वकार्ये तथैव च ।
लौकिके वैदिके वापि ह्युत्तमेऽनुत्तमेऽपि च ॥ ११४ ॥

अन्वयार्थौ ।

(यत्–जो पदार्थ) **सर्वथा**–सर्वप्रकारसूं, **कृष्णे**–श्रीकृष्णचरणमें, **न अर्पितं**–नहीं अर्पण कियो गयो, **तत्**–वा वस्तु को, **केशवः**–भगवान्, **न गृह्णाति**–ग्रहण नहीं करें हैं । **यतः**–कारण कि (यामे) सम्बन्ध वैयर्थ्यं (भवति)–ब्रह्मसम्बन्ध करवे की व्यर्थता हो जाय है। **अतः**–तासूं, **आदौ**–सबसूं पहलें, समर्पणं (कुर्यात्) श्रीकृष्ण के समर्पण करै। **तत्रापि**–वामें भी, **सर्ववस्तूनां**–

सम्पूर्ण वस्तुन को सब की सब को (समर्पण करै) **तथैव च**–और ताही प्रकारसूं, **लौकिके**–लौकिक विवाहादि कार्यमें, **वापि**–अथवा, **वैदिके**–देवतान्तर पूजा श्राद्धादि कार्यमें, (उनमें भी) **उत्तमे**–उत्तम कार्यमें, **अपि च**–अथवा तो, **अनुत्तमे**–हीन मध्यम कार्यमें, (प्रथम एक कृष्णके ही सर्वपदार्थ समर्पण करने चहिये)।

भाषा–विवरण।

प्रथम की कारिकानमे श्री हरिरायजी ब्रह्मसम्बन्धमें पतिव्रता को दृष्टान्त दे आये हैं। ब्रह्मसम्बन्ध है सो पति को वरण है। जा दिन ब्रह्मसम्बन्ध कियो वा दिनसूं एक श्रीकृष्णकूं ही जीवने अपने पति स्वीकार किये। वा दिनसूं ही पतिव्रता की तरह जीव को यह धर्म होय है के सब कार्य अपने स्वामी के लिये और स्वामीकूं निवेदन कर के ही करै। पतिव्रता, देवतान्तर पूजा सास सुसुर की सेवा और पति के अन्य सम्बन्धी मित्र आदि को सत्कार प्रभृति कार्य छोड नहीं दे है, किन्तु ये सब कार्य एक पति के लिये ही, पतिप्रसाद के लिये ही, पति की आज्ञासूं ही, पति के निवेदन करे पीछे ही, करे है। धर्मवश हो के यदि पति उन सब बातन को निषेध करै तो पतिव्रता उन सब को त्याग कर दे यह वाको धर्म है। क्यों कि सम्बन्ध ही ऐसो है। तैसे ही प्रभु और सेवकको सम्बन्ध है। लौकिक

वैदिक आदि सर्व कार्यनमें सब तरहसूं सबकी सब वस्तु-नको एक श्रीकृष्णके ही प्रथम अर्पण करै यह जीव को धर्म है । ऐसें न करै तो वाको ब्रह्मसम्बन्ध करनो ही व्यर्थ है । पतिने व्यवहारको ग्रहण कियो है । वह व्यवहार की रक्षा करनो चाहै है तो वासूं गाढ सम्बन्ध राखवेवारी पतिव्रताको भी यह धर्म है कि पति के व्यवहारकूं अपनो सो समझ के पतिके लिये, वाकी प्रसन्नताके लिये, वाकी आज्ञा शिरोधार्य समझ कें, वाकी गाढ प्रीति सम्पादनके लिये ही, वाके सब व्यवहारकी रक्षा करै ।

ऐसें ही प्रभुने अपनी क्रीडा चलायवेके लिये यह प्रभु मय जगत् और जगत्को व्यवहार बनायो है । वह प्रभु ही अनेक स्थानमें भक्तनकूं भी वाके परिपालन की आज्ञा करै है । जो दृढ अनन्य भक्त हैं उनकूंभी अपनी क्रीडा और क्रीड़ाके व्यवहारके पालनको आग्रह करे है । नहीं करवेमै दंड भी दे है । इन्ही बातनसूं प्रभुकी मर्जी जानी जाय है । जगत्के व्यवहारमें ही लौकिक वैदिक सब तरहके कार्य आजाय हैं । जब जगत्के व्यव-हार रक्षाकी प्रभुकी सामान्य मर्जी है और '**मद्भक्तोपि न वैष्णवः**' आदि वचनके द्वारा उनके परिपालनको आग्रह भी करें है तब दासको भी धर्म है कि उनके आशय और आज्ञाके अनुसार उनकी दृढ प्रीतिके लिये,

उनकी प्रसन्नताके लिये ही लौकिक वैदिक धर्मनको आचरण अनन्यता को भङ्ग न होय या तरहसूं करे, छोडे नहीं ।

यदि ब्रह्मसंबंध लिये पीछे लौकिक विवाहादि और वैदिक अग्निहोत्रादि कार्य कर्तव्य होते ही नहीं तो श्रीमद्वल्लभाचार्यश्री सामान्य सर्वशब्द न कहते और वाकी टीका में श्रीहरिरायजी भी 'सर्वकार्ये' या पद को अर्थ करते समय 'लौकिक वैदिक कार्येषु' यह न कहते । तासूं श्रीहरिरायजी के मत में ब्रह्मसंबंध लिये पहलें अथवा पीछे लौकिक वैदिक कार्यनको कृत्रिमत्याग प्राप्त नही होय है । तासूं ब्रह्मसंबंध लिये पीछे भी वैष्णवने भगवदाज्ञासूं भगवान् की प्रसन्नताके लिये और अपनेमें फलपुष्टि की योग्यता लायवेके लिये उत्तम कार्य कनिष्ठ कार्य लौकिक होंयके वैदिक होंय सब कार्य में छोटे वा बडे कार्य में सर्व वस्तु को भगवन्निवेदन कर के ही सब कार्य करनें यह पुष्टिमार्ग की मर्यादा है । ११३–११४ ॥

विवृतिः ।

पश्चाद्विधेयं सर्वं हि तदा सार्थकता भवेत् ॥
उच्छिष्टदाने सर्वेषां माहात्म्यं चापि सिद्ध्यति ॥११५॥

अन्वयार्थौ ।

सर्वं–सर्वकार्य, **पश्चात्**–निवेदन करे पीछे ही, **विधेयं**–करने चहियें । **हि**–तासूं, **तदा**–तब, **सार्थकता**–ब्रह्म-

सम्बन्धकी सफलता, **भवेत्**–होय है । **च**–और, **उच्छिष्टदाने**–भगवत्प्रसाद देवेसूं ही, **सर्वेषां**–देव पितृमनुष्यनको, **माहात्म्यं**–माहात्म्य, **अपि**–भी, **सिद्ध्यति**–सिद्ध होय है ।

भाषा–विवरण ।

अपने अपने स्वरूप के अनुसार जब सब पदार्थनको भगवन्निवेदन होय चुके ता पीछे ही सब लौकिक वैदिक कार्य करने चहियें । या तरह अपनो नित्य व्यवहार राखवेसूं ब्रह्मसंबंध करनो सफल होय है । दूसरी ये भी बात है के देवता पित्रीश्वर और मनुष्य ये सब भगवान् के दास हैं, और दास यदि प्रभुके उच्छिष्ट को ही ग्रहण करै तो उनको यामें महत्त्व है । जो अपनो अपनो धर्म को परिपालन करै वाको वामें माहात्म्य है ॥ ११५ ॥

सिद्धान्तरहस्यम् ।

दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः ।
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम् ॥६½॥

अन्वयार्थौ ।

दत्तापहारवचनं–एकादश स्कंधको वचन, **तथा च**–तासूं, **हरेः सकलं**–भगवत्समर्पित सब पदार्थ, **न ग्राह्यं**–नहीं लेनो, **इति वाक्यं**–ये वाक्य, **भिन्नमार्गपरं मतम्**–दूसरे मार्गको मानो है ।

भाषा-विवरणम् ।

'अपि दीपावलोकं मे' यह वाक्य, पूजामार्ग और कर्म मार्गको है तासूं भगवन्निवेदित पदार्थ लेनो नहीं यह निषेध भक्तिमार्ग में नही है किन्तु कर्म मार्गमे है ॥ ६½ ॥

विवृतिः । (प्रश्नः)

नन्वेवं लौकिकार्थं हि वैदिकार्थं तथा पुनः ॥
समर्पितपदार्थानां ग्रहणे दोषसम्भवः ॥ ११६ ॥
दत्तापहाररूपो हि धर्ममार्गनिरूपितः ॥
भगवच्छास्त्रसिद्धोऽपि नैवेद्यग्रहणात्मकः ॥ ११७ ॥
' अपि दीपावलोकं म ' इत्यादि प्रभुणोदितम् ॥

अन्वयार्थौ ।

ननु—यहां एक प्रश्न होय है के, **एवं**—या प्रकारसूं, **लौकिकार्थं**—लौकिक कार्य के लिये, **पुनः**—फिर, **तथा**—लौकिक कार्य की तरह ही, **वैदिकार्थं**—वैदिक कार्य के लिये भी, **समर्पितपदार्थानां**—भगवत्समर्पित पदार्थनको, **ग्रहणे**—अपने उपयोगमें लेयवेसूं, **धर्ममार्गनिरूपितः**—धर्ममार्गमें कह्यो गयो, (और) **भगवच्छास्त्रसिद्धः अपि**—श्रीमद्भागवत सिद्ध भी, **दत्तापहाररूपः**—दे के ले लेनो यह, **नैवेद्यग्रहणात्मकः**—नैवेद्य ग्रहणरूप, **दोषसम्भवः**—दोष को उद्भव है । **हि**—क्यों के, **प्रभुणा**—श्रीकृष्णने 'अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम्' इत्यादि भागवत के एकादशमें, **उदितः**—कह्यो है ॥

भाषा-विवरण ।

भगवान् के निवेदन किये पीछे यदि समर्पित पदार्थनकूं लौकिक वैदिक कोई भी कार्य के लिये अपने उपयोगमें लें तो यह एक तरह को दत्तापहार है । अर्थात् दान देकें ले लेनो है । तथा श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णने याके लिये निषेध कियो है के ' मेरे निवेदन कियो दीया को उजेरो भी अपने कोई काममें न ले' श्रीभा. ११ स्कंध । तौ फिर आप, 'निवेदित पदार्थनसूं ही लौकिक वैदिक सब कार्य करने ' एसें क्यों कहो हो ? ॥ ११६-११७ ॥

विवृतिः । (उत्तरम्)

इति चेन्न, यतो मार्गो भिन्नोऽयं पुष्टिनामकः ॥११८॥
मार्गभेदान्न दोषोऽत्र कर्मपूजादिरूपितः ॥
यथाश्रमविभेदेन निषेधानां विधेरपि ॥ ११९ ॥
भिन्नताऽत्र तथा मार्गभेदेनापि विबुद्ध्यताम् ॥

अन्वयार्थौ ।

इति चेत्-जो एसें कहते होओ तो, **न**-यह ठीक नहीं है । **यतः**-कारणके, **अयं**-ये, **पुष्टिनामकः**-पुष्टिनामक, **मार्गः**-मार्ग, **भिन्नः** (अस्ति) जुदो है । **मार्गभेदात्**-जुदो मार्ग होयवेसूं, **अत्र**-या मार्गमें, **कर्मपूजादिरूपितः**-कर्ममार्ग पूजामार्गमें कह्यो, **दोषः**-दोष, **न**-(अस्ति) नहीं है । **यथा**-जैसे, **आश्रमविभेदेन**-आश्रमनके भेदसूं, **निषेधानां**-निषेधनकी, और **विधे**-

रपि–विधिनकीभी, **भिन्नता**–भेद है, **तथा**–तेसें ही, **अत्र**–यहां, **मार्गभेदेन अपि**–मार्गनके भेदसूं भी (भिन्नता–भेद) **विबुद्धयताम्**–जाननो ।

भाषा–विवरण।

या प्रश्न को यही उत्तर है कि यह पुष्टिमार्ग, कर्ममार्ग और उपासनामार्ग दोनोनसूं भिन्न है। भिन्न मार्ग के लिये कहे वचन या मार्गमें नहीं लग सकें। 'अपि दीपावलोकं मे' यह वचन पूजामार्ग और कर्ममार्ग को है तासूं पुष्टिमार्ग में याके द्वारा 'दत्तापहार' दोष नहि आसके है । जैसे वर्ण और आश्रम दोनो चार चार प्रकारके हैं और सब आपसमें भिन्न भिन्न हैं । एकको निषेध दूसरेकूं एवं एक की विधि दूसरेकूं नहीं लगसके । ग्रहस्थाश्रमके धर्म सन्यासमें नहि हो सकें और सन्यासके धर्म ग्रहस्थीसूं नहि बन सकें तासूं शास्त्रने उनके विधि निषेध जुदे जुदे बना दिये हैं। एक की विधि वा निषेध दूसरेमें लग नहीं सकें हैं। तासूं 'दत्तापहार' वचन कर्ममार्गादिमें ही लग सके है भक्तिमार्गमें नहिं। तासूं भगवन्निवेदित पदार्थनकों लौकिक वैदिक कार्यमें उपयोग करवेमें कोई दोष नहीं है।

विवृतिः।

न वा निवेदनं दानं येन दोषो ग्रहे भवेत् ॥ १२० ॥
वाक्यं पूजाप्रकरणात्तद्दोष विनिरूपकम् ॥

अन्वयार्थौ ।

वा–और, **निवेदनं**–समर्पण, **दानं**–दान, **न**–(अस्ति) नहीं है । **येन**–जासूं, **ग्रहे**–भगवन्निवेदितपदार्थके लेवेमें, **दोषः**–दोष, **भवेत्**–होय । **(यतः)**–(क्यों कि) **वाक्यं**–पूर्वोक्त वाक्य, **पूजाप्रकरणात्**–पूजाप्रकरणको होयवेसूं, **तद्दोषविनिरूपकं**–(अस्ति) पूजामें ही भगवद्दत्तको लेयवेसूं अपराध कहे है ।

भाषा-विवरण ।

'पदार्थमेसूं अपनी सत्ता हटायकें दूसरेकी सत्ता कर देनी' याको नाम दान है । तासूं समर्पण किंवा निवेदन दान नहीं है । दान दियो होय वहां ही पीछो लेयवेको दोष है ।

भगवानकूं जो अर्पण कियो जाय है वह दान नहीं है । क्योंके जगद्वर्ति पदार्थनमें जीवकी सत्ता ही नहीं है । सब पदार्थ भगवान्के ही हैं । सबमें भगवान्की ही सत्ता है । जैसे रसोइया अथवा माली अपने मालिककूं रसोई या माला प्रभृति बनाके निवेदन करे है और वह वाको निवेदन दान नहीं कह्यो जासके है क्यों कि वाकी कोई पदार्थ में भी स्वसत्ता नहीं है । वह तो वाहीकी सत्ताके पदार्थनकूं तयार करकें वाके ही निवेदन करे है । और वा दास्यके एवजमें कछु प्रसाद रूप पावे है । एसें ही जीव भी प्रभुके ही पदार्थनकूं तयार करकें प्रभुके ही निवेदन करे है

और भगवदाज्ञासूं भगवान्के दिये भये पदार्थनकूं प्रसाद रूपसूं ग्रहण करै है ।

विवृतिः । (शंका)

नन्वेवं सर्ववस्तूनां समर्प्य विनियोजनम् ॥ १२१ ॥
प्राप्येत कामचारेण दोषाभावान्न रक्षणम् ॥
तथा च सर्ववस्तूनां वृथैव विनियोगतः ॥ १२२ ॥
अन्यत्र तेन भविता सम्बन्धदृढताकृतिः ॥
न स्वसम्बन्धिवस्तूनां नाशनं कुरुते वृथा ॥ १२३ ॥
लोकेऽपि दृढसम्बन्धयुतः स्वाम्यर्थरक्षकः ॥

अन्वयार्थौ ।

ननु—यहां एक विचार होय है के, **एवं**—या तरहसूं, **सर्ववस्तूनां**—सब पदार्थनको, **समर्प्य**—भगवान्कूं निवेदन करके, **कामचारेण**—अपनी इच्छाके अनुसार, **विनियोजनं** काममें लेनो, **प्राप्येत**—प्राप्त होय है । और, **दोषाभावात्**—दोष न होयवेसूं (तस्य) **रक्षणं**—निवेदित पदार्थनकी रक्षा भी, **न** (भवेत्)—नहीं होयसके । **तथा च**—तो अब, **सर्ववस्तूनां**—सब वस्तुनको, **वृथा एव**—निरर्थक ही, **विनियोगतः**—विनियोग होयवेसूं, **अन्यत्र**—श्रीप्रभुसूं दूसरी जगह, **संबंधदृढताकृतिः**—संबंधको दृढ स्थापन करनो, **भविता**—होयगो । **लोकेऽपि**—लोकमें भी, **दृढसम्बन्धयुतः**—स्वामीसूं दृढ सम्बन्ध वारो, **स्वाम्यर्थरक्षकः**—

स्वामीकी वस्तुकी रक्षा करवे वारो (सेवक) **स्वसम्बन्धि-वस्तूनां**–अपने स्वामीकी वस्तुनको, **वृथा**–वृथा, **नाशनं**–नाश, **न कुरुते**–नहीं करे है । तो यहां भगवत्पदार्थको व्यर्थनाश क्यों ।

सिद्धान्तरहस्यम् ।

सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिद्ध्यति ॥७॥
तथा काय समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः ॥

अन्वयार्थौ ।

यथा–जैसे, **लोके**–लोकमें, **सेवकानां**–सेवकनको, **व्यवहारः**–व्यवहार, **प्रसिद्ध्यति**–प्रसिद्ध है, **तथा**–तैसें, (वैष्णवने भी) (सर्वं) (सबकाम) **समर्प्य एव**–प्रभुके निवेदन करके ही, **कार्यं**–करने चहियें । **ततः**–तासूं, **सर्वेषां**–आत्मा आत्मीय पदार्थनकूं, **ब्रह्मता**–अक्षर ब्रह्मपनो, (भवति) (होय है) ।

भाषा-विवरण ।

लोकमें सब भले नौकर चाकर हर एक कार्य अपने स्वामीकूं पुछके ही करे हैं । और ये व्यवहार सर्वत्र प्रसिद्ध है । ऐसें ही वैष्णव भी सबकाम प्रभुकूं समर्पण करके हीं करै यह भक्तिमार्गीय मर्यादा है । यासूं पदार्थ सहित अधिकारीनकूं ब्रह्मभाव होय जायगो ॥ ७½ ॥

विवृतिः ।

अतः प्रोक्तं यथा लोके सेवकानां प्रकर्षतः ॥ १२४ ॥
लौकिको वैदिकश्चैव व्यवहारो हि सिद्ध्यति ॥
तथा सर्वं समर्प्यैव पुनः कार्यं निवेदिभिः ॥ १२५ ॥
पदार्थैस्तेन सम्बन्धे सिद्धे भाववतां दृढे ॥
ततः सम्बन्धतः सिद्ध्येन्निर्दोषसमता पुनः ॥ १२६ ॥
सेवायां सर्ववस्तूनां सर्वेषामधिकारिणाम् ॥
अतस्तदुपयोगेन फलं सिद्धं न संशयः ॥ १२७ ॥
सर्वांशकृतसम्बन्धो यतः फलमिहोच्यते ॥

अन्वयार्थौ ।

अतः प्रोक्तं–याहीसूं आचार्यश्रीने कह्यो हे **यथा**–जैसे, **लोके**–लोकमें, **सेवकानां**–नौकर चाकरन को, **प्रकर्षतः**–अवश्य और सबतरह, **लौकिकः च वैदिकः एव**–लौकिक और वैदिक भी, **व्यवहारः**–खानो पीनो प्रभृति सब काम, **सिद्ध्यति**–स्वामीसूं पुछकें ही चले हैं, **तथा**–तैसें, वैष्णवने भी, **सर्वं**–सबको सब, **समर्प्य एव**—प्रभुकूं अर्पण करके ही **पुनः**–पीछे, **निवेदिभिः पदार्थैः**–निवेदित वस्तुनसूं ही, (सर्वं) **कार्यं**–सब काम करने चहियें। **तेन**–समर्पित वस्तुके ही उपयोग करवेसूं, **भाववतां**–भाविक वैष्णवनको, **सम्बन्धे**–भगवान् के संग सम्बन्ध, **दृढे सिद्धे**–दृढ होय **ततः सम्बन्धतः**–और दृढ सम्बन्ध होयवेसूं,

सेवायां-सेवामें, **सर्व वस्तूना**-सब चीजन की, और, सर्वेषां **अधिकारिणां**-सब तरह के अधिकारीनकी, **पुनः**-फिर, **निर्दोषसमता**-निर्दोषपनो और समपनो (अक्षर ब्रह्मपनो) **सिद्धचेत्**-सिद्ध होय है। **अतः**-तासूं, **तदुपयोगेन**-निवेदित पदार्थनके ही उपयोगसूं, **फलं सिद्धं**-फलसिद्धि भई। **न संशयः**-यामें सन्देह नहिं है। **यतः**-कारणके, **सर्वांशकृतसम्बन्धः**-सब अंशनसूं कियो सम्बन्ध ही, **इह**-ब्रह्मसम्बन्धमें, **फलं**-फल, उच्यते-कह्यो है।

भाषा-विवरण।

निवेदित पदार्थनके ग्रहण करण करवेको आग्रह राखवेसूं भगवदीयपदार्थनको व्यर्थ उपयोग और व्यर्थ जानो प्राप्त होय है यह शंका करनो ठीक नहीं है। क्यों कि समर्पित को ग्रहण करनो और व्यर्थ उपयोग को परस्पर हेतु हेतुमद्भाव है ही नहिं। जो निवेदित नहीं ग्रहण करें हैं वह भी व्यर्थ उपयोग तो करसके है, कछु निवेदित ग्रहण करवे वारो ही व्यर्थ उपयोग अथवा वस्तु को निरर्थक नाश करे है ऐसो नियम नहिं है। तासूं या प्रश्न की यहां उपस्थिति ही नहीं है। किन्तु निवेदित पदार्थ को ग्रहण करवे को तो अन्यकारण है। सो कहे हैं—

जादिनसूं ब्रह्मसंबंध कियो अथवा वाको स्मरण कियो वादिनसूं जीव प्रभु को सेवक है। और सेवक को यह

आवश्यक धर्म है के अपने लौकिक वैदिक सब काम स्वामी सूं निवेदन करके ही करै। स्वामिनिवेदित पदार्थनसूं ही सब कार्य करै, और स्वामीकूं निवेदन करकै ही करै, यह सेवकको धर्म लोकमें प्रसिद्ध है। ऐसें करवेसूं दास्यको संबंध दृढ होय है। जब जीवको और जीवसूं संबंध राखवे वारे पदार्थनको भगवान्के संग सम्बन्ध दृढ होय जाय है, तब सेवामें काम आते सब वस्तु और सब अधिकारी निर्दोष और सम होय जांय हैं। भगवद्गीतामें अक्षर ब्रह्मकूं निर्दोष और सम कह्यो है। सब पदार्थनको और सब अधिकारीनको वा ब्रह्म के द्वारा भगवान् के साथ सम्बन्ध होयवेसूं तथा प्रतिसमय सब पदार्थनको और अधिकारीनको प्रभुके संग संबंध होते रहवेसूं चिरकालमें उनवस्तुनकूं और अधिकारीनकूं निर्दोष समता प्राप्त होय है। मनुष्य के व्यवहारके हजारन अंश हैं उन सब अंशनसूं ब्रह्मके साथ सम्बन्ध होनो चहियें तब निर्दोष समता प्राप्त होय है। और प्रत्येक कार्य निवेदन करके ही करवेसूं अपने आप सर्वांश को संबंध होय जाय है। दृष्टान्तमें नित्य नैमित्तिक सब व्यवहार ऐसें ही समझो। प्रातःकालसूं लेकें सायंकाल पर्यन्त अनेक व्यवहार होंय हैं। उन व्यवहारमें आयवे वारे सब वस्तु और सब अधिकारी वा व्यवहार के अंश कहावें हैं। अब ब्रह्मके साथ सम्बन्ध

करवे वारे जीवकूं दास धर्म होयवेसूं यह आवश्य है कि वा व्यवहार के सर्वांश को ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होनो ही चाहिये । और वो संबंध नित्य निवेदन करवेसूं सिद्ध होय है । तासूं प्रत्येक जीवमात्रकूं असमर्पित पदार्थनको उपयोग न करके हर एक कार्यमें प्रभुके निवेदन करनो ही चहिये ॥ १२४–१२५–१२६–१२७ ॥

सिद्धान्तरहस्यम् ।

गङ्गात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना ।
गङ्गात्वेन निरूप्या स्यात्तद्वदत्रापि चैव हि॥८½॥

अन्वयार्थौ ।

(यथा) (जैसे) **सर्वदोषाणां**–सब दोषनकूं, **गङ्गात्वं**–गङ्गापनो प्राप्तहोय है, और गङ्गामे मिले पीछे, **गुणदोषादिवर्णना**–वाको गुणदोषवर्णन, **गङ्गात्वेन**–गङ्गापनसूं, ही **निरूप्या स्यात्**–निरूपण करी जाय है **तद्वत्**–तैसें ही, **अत्र अपिच**–यहां भी समझनो । **एव, हि**–यह बात सब शास्त्रनसूं निश्चित है ।

भाषा–विवरण ।

या प्रकार प्रतिदिन निवेदन को स्मरण करवेसूं और तदनुसार ही अपने सब व्यवहार राखवेसूं थोडे कालमें सब दोषन की मूलतः निवृत्ति हो जाय है । जैसे गङ्गातीर स्थित शहर की नालीन के जल, गङ्गामें मिले पीछे गङ्गारूपकूं प्राप्त

होय हैं । उन के गुण दोष की चर्चा फिर गङ्गा के रूपमें ही करी जांय है । ऐसें ही यहां भी भगवत्संबंधी के सब व्यवहार फिर ब्रह्मरूपताकूं प्राप्त होंय हैं । और सहज दोषादि मूलसूं दूर हो जांय हैं ॥ ८$\frac{१}{२}$ ॥

विवृत्तिः ।

ननुदोष निवृत्तिः का, मलस्येव हि नाशनम् ॥१२८॥
अथवा परिपाकेन दोषतागमनं, यथा ॥
मृण्मयेऽपि घटे पाकादामतैव निवर्तते ॥ १२९ ॥
न मृण्मयत्वमेवं हि तन्निवृत्तिरिहोच्यते ॥
इति संशयतः प्राह प्रभुर्गङ्गात्वमेव हि ॥ १३० ॥

अन्वयार्थौ ।

ननु—यहां यह प्रश्न होय है के, **दोषनिवृत्तिः का**—यहां दोषनको दूर होनो कहा समझनो, **हि**—कारण के, **मलस्य**—मैलके, **नाशनमिव**—नाश की तरह, **अथवा**—किंवा; **परिपाकेन**—घडा आदि के पकजायवेसूं, **दोषता गमनं** (यथा भवति) दोष को दूर होनो जैसे । ताको उत्तर दे हैं के, **यथा**—जैसे, **पाकात्**—अग्निमें पकायवेसूं, **मृण्मये**—माटीके बने, **घटे**—घटा प्रभृति बासनमें, **आमता एव**—कच्चो पनो ही, **निवर्तते**—दूर होय है, **अपि**—किन्तु, **मृण्मयत्वं**—वाको माटी पनो, **न** (निवर्तते)—नहीं दूर होय है । **हि**—(ऐसें ही), **इह**—ब्रह्मसंबंध करवेमें, **एवं**—

या प्रकारसूं, **तन्निवृत्तिः**–दोषनकी निवृत्ति, **उच्यते**–कही जाय है। **इति**–या, **संशयतः एव**–संदेहसूं ही, **प्रभुः**–श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु, **गङ्गात्वं**–दोषनको गङ्गापनो, **प्राह**–कहें हैं। **हि**–यह बात निश्चित है।

भाषा-विवरण।

दोष निवृत्ति दो प्रकार की होय है। एक नाश होनो, दूसरी शुद्धि होनो। यहां दोषनकी शुद्धि होनो ही दोष निवृत्ति मानी है। ओर याहीसूं श्रीमद्वल्लभाचार्यने दोषन कूं गङ्गापनो प्राप्त होय है, यह कह्यो है। अर्थात् जैसे माटी को घडा, पके पहले गीलो रहवे सूं अपवित्र रहे है पर आंच के संबंध होयवेसूं वाकी अपवित्रता दूर हो जाय है और घडा शुद्ध हो जाय है। पर वाको स्वरूप नाश नहीं होय है। और वो अभीष्ट भी नहीं है। घडा की शुद्धि ही अभीष्ट है वाको नाश नहि। अग्नि स्वरूपतः शुद्ध है, और दूसरेकूं शुद्ध करवे की वामें सामर्थ्य है। वाके संबंधसूं घडाकी शुद्धिमात्र हो जाय है। ऐसें ही ब्रह्म निर्दोष है। निर्दोषके संबंधसूं जीवके अहंता ममता आदि दोष निवृत्त हो जांय हैं। अर्थात् दोष भी निर्दोष हो जाय हैं। अहंता ममता आदि दोषनको देहादि में लगनो अर्थात् प्रपंचवर्तिपदार्थनमें लगनो ही दोष है। वे स्वयं दोष नहीं है। अन्यथा 'अहं सर्वस्य प्रभवः' 'मम योनिर्महद्ब्रह्म'

आदि वचननमें भी दोष माननो पडेगो । क्यों कि यहां भी अहं ममको प्रयोग तो है । में गोरो, मे पंडित, मेरी स्त्री, मेरो धन, यही अहंता ममता दोष है । ब्रह्मसंबंध करवेसूं ये दोष जाते रहें है । और अहंता ममता निर्दोष हो जांय हैं । में ज्ञान स्वरूपं हूं, में जड नहीं, में प्रभुको अंश हुं, में ब्रह्म हूं, में प्रभुको दास हूं, मेरे प्रभु हैं इत्यादि अहंता ममता दोष नहीं हैं, निर्दोष हैं । येही नहिं, ब्रह्मसंबंध करवेसूं और वाको सर्वदा स्मरण राखवेसूं सब व्यवहाररूप दोष निर्दोष हो जांय हैं । जगद्वर्ति पदार्थनको प्रभुके कार्यमें न आय-कें अपने ही कार्यमें आनो यह दोष है, और प्रभु-के कार्य में आय कें प्रसाद रूपसूं अपने ग्रहण करनो निर्दोष है । ऐस सर्वत्र समझ लेनो । और यासूं ही आचार्यनने गङ्गा और अन्यजल को दृष्टान्त दियो है । आधिभौतिक श्रीगङ्गाजी जलस्वरूप हैं और अन्यजल भी जल हैं । किन्तु श्रीगङ्गाजी स्वरूपतः शुद्ध हैं और दूसरेकूं पवित्र करवे की सामर्थ्य राखें हैं । उन श्रीगङ्गाजी के संग जब नगरके जलको संबंध होय तब वह नागरिक जल भी पवित्र होजाय है, निर्दोष होजाय है । जलको जलपनो नष्ट नहीं होय है किन्तु वाको दोष दूर होजाय है । श्रीगङ्गाके संबंधसूं वह अन्यजल स्वरूपतः रहते भी निर्दोष होजाय है । यह बात आचार्यनने प्रथमस्कंधके

'नष्ट प्रायेषु' या श्लोक की सुबोधिनीमें भी सूचित करी है। तैसें ही ब्रह्म निर्दोष और सम है, तासूं ब्रह्मके संबंध करवेसूं सर्व दोषनकी निर्दोषता सिद्ध होय है। अहंता ममता आदि दोष निर्दोष होय कें भगवत्सेवोपयोगी होजांय हैं। और अहंता ममताके विषय पदार्थ भी निर्दोष होयकें भगवदुपयोगी होजांय हैं। १२८–१२९–१३० ॥

विवृतिः ।

दोषाणां तत्प्रविष्टानां जलानामिव सर्वथा ॥
तत्प्रवेशे पुनस्तेषां गुणदोषादिवर्णना ॥ १३१ ॥
गङ्गात्वेनैव कर्तव्या न पानीयप्रयोगतः ॥
शूद्रत्वादिकथाऽत्रापि वैष्णवत्वेन बुद्ध्यताम् ॥१३२॥

अन्वयार्थौ ।

जलानां इव–जल की तरह, **तत्प्रविष्टानां**–ब्रह्मके साथ संबद्ध भये, **दोषाणां**–अहंताममतादि दोषनको, **तत्प्रवेशे**–अच्छी तरहसूं ब्रह्ममें प्रवेश भये पीछे, **पुनः तेषां**–फिर उनकी, **गुणदोषादिवर्णना**–दोषगुणादिकी चर्चा, **गङ्गात्वेन एव**–गङ्गापनेसूं ही, **कर्तव्या**–करनी उचित है, **पानीयप्रयोगतः न**–(कर्तव्या) अन्यजलके प्रयोगसूं नहीं करनी चहिये, (एवं) (ऐसें) **अत्र अपि**–ऐसें यहां भी समझनो । **शूद्रत्वादिकथा**–चार वर्णन की चर्चा भी, **वैष्णवत्वेन**–वैष्णवपनेसूं ही, **बुद्ध्यताम्**–जाननो ।

भाषा-विवरण।

श्रीगङ्गाजी में जब अन्यजल मिल जांय तब स्वरूपतः जलके रहते भी वामें अन्यजल ऐसो शब्द नहीं कह्यो जाय, क्यों कि दोष दूर होयकें वो निर्दोष होय चुक्यो है। जलमें दोष गुणसूं ही अन्यताको प्रयोग होय है। जल जल सब समान है। जलस्वरूप रहते भी श्रीगङ्गा निर्दोष हैं, अन्यजल जल रहते भी सदोष है, तासूं वामें अन्यताको प्रयोग करे हैं। जब वो श्रीगङ्गा में प्रवेश कर जाय है तब वाको दोष जातो रहे है अब वाकूं गङ्गा ही कहनो ठकि है अन्य जल नहीं। क्यों के दोषही अन्यता ही, वह दूर हो चुकी है।

ऐसें ही दोषनको जब दोषपनो दूर हो जाय तब वे दोष शब्दसूं नहीं किन्तु ब्रह्मरूप कहे जांय हैं। और वे जिन पदार्थनमें रहते होंय वेभी ब्रह्मके साथ सम्बन्ध करवेसूं ब्रह्मरूप होय जांय हैं। तासूं ही जीवादिकूं ब्रह्मरूपता प्राप्त होय है यह बात अन्यत्र श्रीआचार्यचरण आज्ञा कर चुके हैं।

ब्रह्मसंबंध करे पीछे और स्मरणदिसूं वाके सिद्धभये पीछे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यशूद्रस्त्री सब में वैष्णव शब्दकोही प्रयोग करनो। तासूं ही सम्प्रदायमें सर्वत्र वैष्णव शब्दको प्रयोग कियो जाय है।

यहां शूद्रत्वादिकथा शब्दमें 'कथा' शब्दको यह तात्पर्य है के शब्दोपयोग मात्र ठीक है किन्तु भोजनादि व्यवहार परिवर्तन ठीक नहीं है। चारों वर्णके संग समान व्यवहार करवेकी आज्ञा सर्वथा नहीं समझनो। क्यों कि स्वरूपतः नाश नहीं होय है यह बात कह चुके हैं। और ताहींसूं सेवा आदि अलौकिक विषयमें ही बाध नहीं करें है। लौकिकमें तो करें ही हैं।

दूसरें जहां तक द्वितीय पुष्टि न होय, अर्थात् विप्रयोगात्मक स्वरूप को प्रादुर्भाव न होय तहांतक सर्वमर्यादानको पालन करनो यह याही ग्रन्थमें पूर्वमें आज्ञा कर आये हैं। अब यहां तासूं विरुद्ध अर्थ नहीं लेसकें हैं तासूं भी यहां शब्दमात्रको प्रयोग करनो यही अभीष्ट है, व्यवहार परिवर्तन अभीष्ट नहीं है। जो लोग ऐसे वचननको भलतो अर्थ करके भोजनादि व्यवहारको सर्व विप्लव करनो चाहें हैं वे सर्वविप्लववादी हैं ऐसें समझनो ॥ १३१–१३२ ॥

विवृतिः।

उपदिश्य जनोद्धारं पुष्टिमार्गेण सर्वथा ॥
निजास्यरूपाचार्येभ्यो दयार्द्रेभ्यो दयानिधिः ॥१३३॥
कृपया प्रकटीभूय साक्षाच्छ्रीगोकुलेश्वरः ॥
लीलाविशिष्टरूपस्तद्धृदयं प्राविशद्धरिः ॥ १३४ ॥

अन्वयार्थौ।

दयानिधिः–दयाके समुद्र, **लीलाविशिष्टरूपः**–सदा लीला सहित जिनको स्वरूप है, **श्रीगोकुलेश्वरः**–निःसाधनके उद्धार करवेवारे **साक्षात् हरिः**–स्वयं श्रीहरि, **कृपया**–कृपासूं, **प्रकटीभूय**–भूतल पै प्रकट होयके, **दयार्द्रेभ्यः निजास्यरूपाचार्येभ्यः**–दयालु भगवन्मुखाग्नि अवतार श्रीवल्लभाचार्य के लिये, **पुष्टिमार्गेण**–पुष्टिमार्गसूं, **सर्वथा**–जरूर **जनोद्धारं**–लोकोद्धारके मार्गको, **उपदिश्य**–उपदेश देकें, **तद्धृदयं**–(फिर पीछें) श्रीवल्लभाचार्यके हृदयमें ही **प्राविशत्**–प्रवेश कर गये।

भाषा–विवरण।

संयोग विप्रयोग भावात्मक प्रभु श्रीकृष्ण सर्वदा सर्वत्र अप्रकट रूपसूं बिराजें है। याही को नाम अनवतार दशा है। प्रभुको लीलासहित प्रकट होनो ही अवतार कहावे है। अवतार नियत और अनियत दोनो तरहके हैं। कच्छ मच्छ आदि अवतार नियत हैं। किन्तु भावात्मक प्रभुको प्राकट्य अनियत है। अपनी इच्छामात्रसूं जब तब भावात्मक प्रभुको प्राकट्य होयसके है। व्यासजीके गये पीछे रहस्यकूं छिपायवे वारी श्रीभागवतकी अनेक टीकायें होय जायवेसूं भगवन्माहात्म्य और भक्तिको नाश होतो देख प्रभुने श्रीवल्लभाचार्यकूं भूतलपै प्रकट किये। और आज्ञा करी के श्रीम-

द्भागवत को कृष्णाभीष्ट रहस्य प्रकट करो । श्रीवल्लभाचार्य, वाणीके अधिपति तथा भगवन्मुखाग्निको अवतार हैं । तासूं आपने प्रभुके आशयके अनुसार श्रीसुबोधिनीमें श्रीभागवतको रहस्य प्रकट कियो । शास्त्रार्थ, स्कंधार्थ, प्रकरणार्थ, अध्यायार्थ, वाक्यार्थ, पदार्थ, और अक्षरार्थ, इन सात अर्थनको प्रकाश कियो । तथापि लोकनकूं मन्दतम और साधन रहित देखकें दया करि आप श्रावणकी शुक्ल एकादशी के निशीथमें प्रकट भये । और आचार्यनकूं पुष्टिमार्ग को निरूपण कियो । सपरिकर मार्गको निरूपण करके फिर पीछें श्रीवल्लभाचार्यश्रीके हृदयमें ही बिराजगये ॥१३३-१३४ ॥

विवृतिः ।

इतिश्रीवल्लभाचार्यदासदासेन रूपितः ॥
तद्वाक्यगूढवाक्यार्थस्तेन तुष्यन्तु ते मयि ॥ १३५ ॥

अन्वयार्थौ ।

श्रीवल्लभाचार्यदासदासेन–श्रीवल्लभाचार्य के दासके भी दास (श्रीहरिरायजी) ने **रूपितः**–निरूपणकियो, **तद्वाक्यगूढवाक्यार्थः**–श्रीवल्लभाचार्य के गूढवाक्यनको वाक्यार्थ, **इति**–सम्पूर्णभयो । **तेन**–यासूं, **ते** श्रीवल्लभाचार्यचरण, **मयि**–मेरे ऊपर, **तुष्यन्तु**–प्रसन्न होवो ।

भाषा-विवरण ।

श्रीहरिरायचरणने अनेक ग्रन्थनके द्वारा दैन्य निःसा-

वनता और रस को निरूपण अलौकिक रीतिसूं प्रकट कियो है तासूं आप अपने आपकूं भगवद्दास के भी दास लिखें हैं। श्रीहरिरायचरण जो भूतल पै प्रकट न होते तो श्रीमदाचार्यचरण के गूढ वचननको रहस्य प्रकाश होनो दुर्लभ हो। या सिद्धान्तरहस्यकी टीकामें भी आपने अनेक रहस्य प्रकट किये हैं। और इतनो कर के भी दीनता पूर्वक श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणकी कृपा ही चाही है।

यह देवर्षि श्रीद्वारकानाथात्मजभट्टश्रीरमानाथशास्त्रिकृत सिद्धान्तरहस्यकी श्रीहरिरायजीकी विवृतिकारिकानकी भाषाटीका सम्पूर्ण भई।

समाप्त.

વેચવાનાં પુસ્તકો

સંસ્કૃત

		રૂ.	આ.	પા.
૧	શ્રી સુબોધિનીજી	૨	૦	૦
૨	ભક્તિહંસ ..	૦	૧૪	૦
૩	શ્રી યમુનાષ્ટક... (શ્રી હરિરાયજી)	૦	૩	૦
૪	શ્રી યમુનાષ્ટક... (શ્રીપુરૂષોત્તમજી કૃત)	૦	૨	૬
૫	બાલબોધ ...	૦	૪	૦
૬	,,શ્રીદેવકીનન્દનકૃત	૦	૨	૬
૭	સેવાકૌમુદી ...	૦	૨	૦
૮	શ્રીબાલકૃષ્ણચમ્પુ	૪	૦	૦
	નિર્ણયાર્ણવ ...	૦	૪	૦
૧૦	સિદ્ધાંત સિદ્ધાપગા	૦	૬	૦
૧૧	દર્શનાદર્શ ...	૦	૨	૦
૧૨	વ્યાખ્યાનરત્નાવલિ	૦	૧	૦
૧૩	સ્તુતિપારિજાત...	૦	૧	૦
૧૪	સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી	૦	૨	૦
૧૫	પુષ્ટિપ્રવાહ મર્યાદા	૦	૫	૦
૧૬	વેદાન્તચિન્તામણિ	૧	૦	૦

ગુજરાતી તથા હિન્દી

		રૂ.	આ.	પા.
૧	શુદ્ધાદ્વૈત દર્શન (પ્રથમભાગ હિંદી)	૦	૮	૦
૨	,, દ્વિતીય ભાગ (હિન્દી)	૦	૮	૦
૩	,, પ્રથમ ભાગ (મરાઠી)	૦	૮	૦
૪	વલ્લભાખ્યાન... (વ્રજભાષા)	૩	૦	૦
૫	શુદ્ધાદ્વૈતસિદ્ધાંતસાર (હિન્દી)	૦	૩	૦
૬	,, (ગુજરાતી)	૦	૩	૦
૭	ષોડશગ્રન્થ(વ્રજભાષા)	૦	૬	૦
૮	ગીતાતાત્પર્ય (હિન્દી)	૦	૨	૦
૯	,, (ગુજરાતી)	૦	૨	૦
૧૦	ન્યાસાદેશ (હિન્દી) (ગુજરાતી) .·.	૦	૦	૦
૧૧	સેવાકૌમુદી(હિન્દી)	૦	૪	૦
૧૨	,, (ગુજરાતી)	૦	૪	૦
૧૩	ભગવદ્ગીતા સટીક	૦	૮	૦

પુસ્તક મળવાનું ઠેકાણું

શ્રી બાલકૃષ્ણ શુદ્ધાદ્વૈત સંસ્કૃત પુસ્તકાલય.

મોટું મંદિર (ગૌશાળા ઉપર) મુંબઇ નં. ૨

[illegible]

શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતા

ભગવદ્ધર્મબોધિની ટીકા

શ્રીકૃષ્ણના વચનામૃતરૂપ ગીતા સર્વ શાસ્ત્રોમાં પ્રધાન શાસ્ત્ર છે. [illegible] અને જ્ઞાનનું વિસ્તારથી જે વર્ણન શ્રીભાગવતમાં છે તેજ ટુંકમાં ગીતામાં છે. પણ અનેક વિવિધ ટીકાઓએ તેમજ વક્તાઓએ, ભગવદ્ગીતાના અર્થને બિલકુલ ફેરવી નાખ્યો છે, કોઈક ગીતાને નાસ્તિકમતને પોષણ આપનાર બનાવી દે છે, અને કોઈક આજકાલના સુધારાના મત પ્રમાણે તેનું રૂપ બનાવી દે છે ટીકાઓને વાંચી વાંચીને લોકો સન્માર્ગથી ભ્રષ્ટ થતા જાય છે. [illegible]મ તત્વ અને પુરૂષોત્તમના સાકાર સ્વરૂપનું વર્ણન ગીતામાં અને સુન્દર રીતિથી કર્યું છે. પણ મનગમતા અર્થવાલી ટીકા શ્રીપુરૂષોત્તમના સ્વરૂપને નિરાકાર, નિર્વિશેષ ઠરાવવા યત્ન કર્યો

શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યશ્રીએ કર્મ જ્ઞાન અને ભકિતના ખરા [illegible] સમજાવ્યું છે. વેદ ગીતા સુત્ર અને ભાગવતના અર્થોને મૂલરૂપમાં બતાવ્યા છે. તેના અનુસારે આ 'ભગવદ્ધર્મ બોધિની' પણ વૈષ્ણવજનને સંતોષ થાય અને આચાર્યશ્રીના સંમત પ્રકટ કરે એવી રીતે કર્મ જ્ઞાન અને ભકિતના સ્વરૂપને પ્રકટ કર્યું છે, જે જે ઠેકાણે બીજા ટીકા કરનારાઓએ ગોટાળો કર્યો છે તે ઠેકાણે તેનું સચોટ ખંડન કરીને અસલ અર્થને સમજાવ્યો છે, પ્રારંભમાં સમગ્ર ગીતાનો આશય સંક્ષેપમાં વર્ણવ્યો છે. અને તેમ છતાં વધારે વિસ્તાર થવા દીધો નથી, જેથી લોકોને નિત્યપાઠ કરતી વખતે અગવડ પડે, માટે જેને ગીતાનો શુદ્ધ અર્થ સમજવો હોય ગીતાપાઠનું પુણ્ય લેવું હોય તે દરેક ધાર્મિક ગ્રહસ્થે તેનો સંગ્રહ કરવો જોઈએ.

કંતાનનો પુઠો–ગુટકા સાઇજ–મૂલ ૧।) પોસ્ટેજ જુદું.

મગાવાના ઠેકાણાઃ–શ્રીબાળકૃષ્ણ પુસ્તકાલય––[illegible]મંદિર–મુંબઈ

શ્રીજીવનાચાર્ય પુષ્ટિ સિદ્ધાન્ત પુસ્તક ભંડાર

લાલબાવા મંદિર, ભૂલેશ્વર–મુંબઈ.

चैव नामा[illegible] । [illegible] ।

[illegible] तत्कलमेव [illegible]
चित्तस्य निर्वृतिमतीव च निर्वहन्ति ॥
श्रीकृष्णभक्तिरिह भूरि विवर्धमाना
नूनं परिस्फुरति चन्द्रिकया समाना ॥ ८ ॥

[illegible]लने सर्वविद्यानां धनानामपि चार्जने ॥
[illegible]लोकप्रतिष्ठायां यतन्ते बहवो जनाः ॥ ९ ॥
[illegible]श्चर्यं यदयं कविः स्वहृदयं पुनःपुनः श्रीकृष्णभक्ति
[illegible] ।
[illegible]:—यतः उचितमेव कुरुते ।
[illegible]अनेन खलु जन्तुना सकलशास्त्रमभ्यस्यता
[illegible]नं विपुलमाप्यतां सकलसभ्यता लभ्यताम् ।

[illegible] तावदयमश्नुते हृदयसौख्यमात्यन्तिकं
[illegible] यावदलम्बते यदुपतेः पदाम्भोरुहम् ॥ १० ॥
[illegible]विद्यादित्रयस्य ।
[illegible]ने बहवः क्लेशा अर्जितस्य च रक्षणे ॥
[illegible]हिष्णुकृतेर्ष्याभिर्विवादश्च प्रतिक्षणम् ॥ ११ ॥
[illegible]एवं तर्हि श्रीकृष्णभक्तिः सर्वेभ्यः किमिति न रो-

[illegible]त्राः खलु वासनाः पश्य ।
[illegible]णि स्वर्धुनीविमलवारिणि स्थिते ॥
सूकरः सुखमतीव मन्यते ॥१२॥
[illegible]खपरम्परेभ्यः पुरुषधुरन्ध[illegible]

नित्यं स्वधर्मविषये विहिताभिमुख्या-
श्चित्ते तृणीकृतसमस्तगृहादिसौख्याः ॥
श्रीकृष्णनाथपदपङ्कजलब्धसौख्याः
श्रूयन्त एव बहवो बलिभीष्ममुख्याः ॥ [illegible] ॥

एवं सति केषां चिदत्र नादरस्तावता न क्षतिः [illegible]

गोविन्दसेवनमिदं यदि नाद्रियन्ते
दुष्टा निकृष्टमतयो विषयैकनिष्ठाः ॥
किं तावता ज्वरवतामरुचेर्न जातं
दुग्धस्य गुडमधुरस्य विदूषणं [illegible]

नटः—अये कोऽयं श्रीकृष्णभक्तेरुत्कर्षः [illegible]
मेभ्योऽमुष्यामेवादरः क्रियते ।

सूत्रधारः—सत्यमेवोत्कर्षः [illegible]

संसारिणां [illegible]
भक्तिः [illegible]
सञ्जायते [illegible]
नानारसायन[illegible]

अन्योऽप्युत्कर्षः श्रीकृष्ण[illegible]

अतीव [illegible]

[illegible]

आप [illegible]

[illegible]